जुलाई, 2013

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

ISSN - 2321-3922

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.sambhavya.com

ISSN - 2321-3922

संभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)
जुलाई, 2013

संस्थापक
श्री दयानन्द जायसवाल

संरक्षक
डॉ. विजय कुमार सिंह

प्रधान संपादक
डॉ. शीतल अवस्थी

संपादक
डॉ. अश्विनी
डॉ. जी. पी. सिंह

संस्थापक सदस्य
डॉ. राम किशोर शर्मा
श्री उमाकान्त भारती
ई. नन्दलाल यादव ''सारस्वत''
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्री रवीन्द्र प्रसाद मोदी

स्थायी सदस्य
श्री अजय कुमार सिंह
श्री धनञ्जय प्रसाद मण्डल 'अजित'
श्री विनय कुमार
श्री महेश प्रसाद सिंह
श्री सत्यदेवेश प्रसाद
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

कार्यालय प्रभारी
श्री अनूप किशोर
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक।
रचनाओं के लिए लेखक उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र भागलपुर।

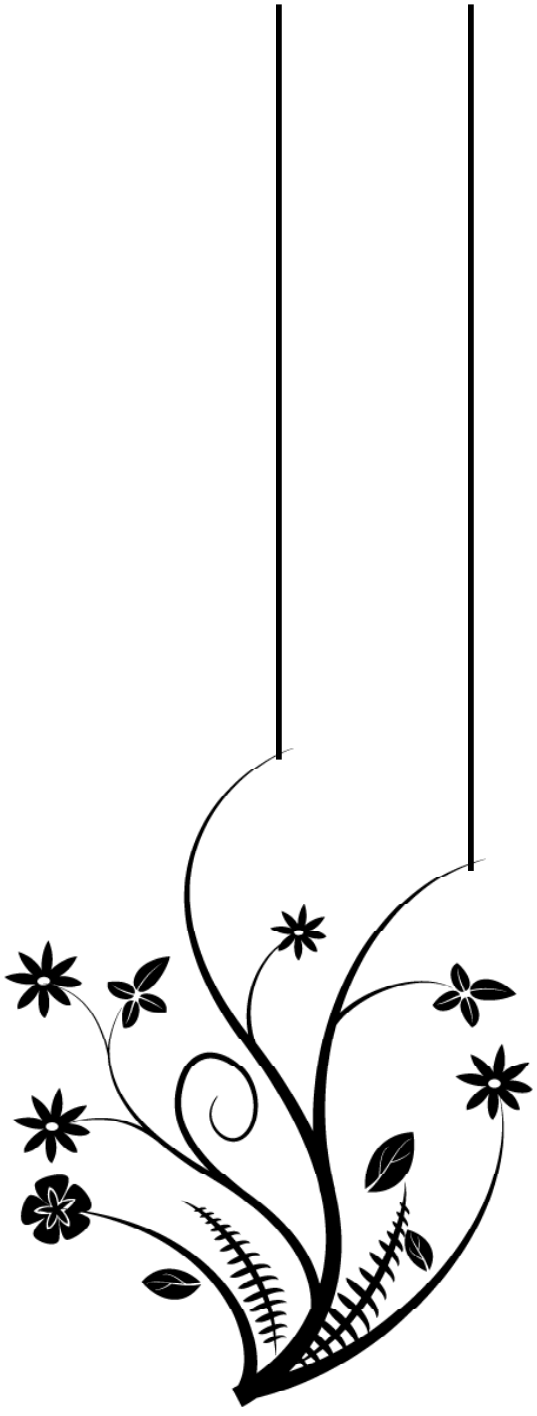

सहयोग – 15/-

संपर्क : Sri Dayanad Jayswal
Mourya Jublilee Place, Zero Mile, Bhagalpur - 813210 (Bihar)
Mob. : 9931240303, 9570838880
Website : www.sambhavya.com | e-mail : dnjaysawal.sambhavya@gmail.com

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.sambhavya.com

आमंत्रण

चिंतनशील रचनाकारों से आग्रह है कि
अपनी मौलिक एवं नवीनतम रचनाएं

'संभाव्य'

में प्रकाशन हेतु भेजकर
विश्वग्राम को सजाने–संवारने में सहयोग करें।

डॉ. जी. पी. सिंह
संपादक, संभाव्य
gpsingh@sambhavya.com

अनुक्रम

क्र0 सं0				पृष्ठ सं0
1	संस्थापक की कलम से...			05
2	उत्तराखंड का जल-प्रलय	श्रद्धांजलि	संभाव्य परिवार	06
3	पुरोवाक्	संपादकीय		07
4	आओ छन्द बनें	आलेख	डॉ0 अश्विनी	08
5	अंग प्रदेश का हिन्दी साहित्य	लघु शोध	डॉ0 अमरेन्द्र	10
6	'द्विजेन्द्र' की कविताएँ	कविता	डॉ0 गौरीशंरक मिश्र 'द्विजेन्द्र'	16
7	प्राण साहब के बहाने...	वैचारिक लेख	डॉ0 शंकर मोहन झा	17
8	बुद्ध, कलियुग में तुम्हें फिर...	कविता	शशांक सौरभ	18
9	शून्य...शून्य...शून्य...	कहानी	पी0 एन0 जायसवाल	19
10	ग़ज़ल	गज़ल	अशोक मिजाज	22
11	रूठ आया हूँ	कविता	राज हीरामन	23
12	अस्तित्व के लिए	कविता	अमर कुमार पाण्डेय	23
13	आप की सुनीता	कहानी	अनिरूद्ध प्र0 विमल	24
14	क्यों न मैं भी	कविता	डॉ0 अलका अग्रवाल	26
15	वैश्वीकरण के दौर में नारी	वैचारिक लेख	संयुक्ता गुप्ता	27
16	चार कविताएँ	कविता	ई. दीप्ति शर्मा	28
17	बेटियाँ	कविता	डॉ0 राजेन्द्र पंजियार	28
18	नक्षत्र विज्ञानवेत्ता 'चंद्रशेखर'	जीवन-दर्शन	मितेन्द्र कुमार मितेश	29
19	उम्मीद की कंदील	कविता	अभिनव अरूण	30
20	भूमंडलीकरण और साहित्य	निबंध	रहीम मियाँ	31
21	आदमी	कविता	डॉ0 अनुज प्रभात	33
22	दादी आई थी	कहानी	डॉ0 मीरा झा	34
23	पार्टनरशिप	व्यंग्य	रामावतार राही	36
24	गद्दार	कहानी	उमाकांत भारती	37
25	सवाल-दर-सवाल	कविता	डॉ0 चंद्रेश	39
26	शब्द : दो कविताएँ	कविता	डॉ0 अचल भारती	39
27	शब्द, सृजन और संवेदना	समीक्षा	उत्तम पीयूष	40
28	गा न पाया गान जी भर	कविता	स्व0 रवीन्द्र रवि	40
29	दीपक मेघ हिण्डोल : एक समीक्षा	समीक्षा	डी.एन. जायसवाल	41
30	चाँद और मैं	कविता	ई. सूर्य प्रताप सिंह	42
31	लोकवाणी	प्रतिक्रिया	पाठकगण	43

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.sambhavya.com

संभाव्य संदेश

प्रकृति का सम्मान करें। पर्यावरण की रक्षा करें।।

जल, जमीन, जड़, जीव, जंतु, जंगल और जलवायु का सम्मान करें।

''मै तेरा हूँ और तुम मेरे हो''

की भावना से स्वयं को अच्छादित करें।

पंच तत्वों से निर्मित यह स्थूल शरीर और इस शरीर में

सूक्ष्म रूप से प्राणतत्त्व के रूप में विराजित आत्मा प्रकृति ही तो है।

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक, संभाव्य

dnjaysawal@sambhavya.com

संस्थापक की कलम से

आज से सौ वर्ष पूर्व के भारत की कल्पना करें जब हम अंग्रेजों के गुलाम थे। उनका एक सिपाही भी गाँव या कसबे में आ जाता था तो लोग दहशत में आ जाते थे। देश को आजादी मिली, किन्तु न जाने इसको किसकी नजर लग गई। विभाजन के जख्म के साथ कई समस्याएँ भी पैदा हो गईं। गाँवों-शहरों में जो सर्वधर्म सद्भाव का वातावरण था, वह धूमिल होने लगा। कुशल-क्षेम पूछने के स्थान पर लोग एक दूसरे से कतराने लगे।

जहाँ रहीम चाचा और राम भैया एक दूसरे से ''जय श्री राम' 'आदाब अर्ज' कह कर मिलते थे, एक दूसरे से कटने लगे। वह सुगंधि-सुरभि-समरसता न जाने कहाँ चली गई। विकास की राह पर देश आगे तो बढ़ता रहा, पर तेजी से वैश्वीकरण, भूमण्डलीकरण, शहरीकरण भी आ धमका और साथ में लाया संचार तंत्र का नेटवर्क। हम इसे सजाने, संवारने या निपटाने में ही लगे थे कि आतंकवाद ने अपना आक्रमण कर दिया, जिसका न कोई धर्म न कोई मजहब। क्षेत्रवाद, संप्रदायवाद, जातिवाद आदि देश की सामाजिक संस्कृति बन गई। आज बढ़ती जनसंख्या के कारण भारत ही नहीं, विश्व के अनेक देशों में लाखों लोग भूखमरी का जीवन जीने को मजबूर हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब-जब मानवीयगुणों की अवहेलना हुई है, युद्ध की स्थिति उत्पन्न हुई है। इसलिए प्रजातांत्रिक मूल्यों के विकास के लिए भी मानवता के मूल्यों को प्रोत्साहन दिये जाने की आवश्यकता है।

मानव परिवारों के सभी सदस्यों के जन्मजात गौरव और सम्मान तथा अविच्छिन्न अधिकार की स्वीकृति ही विश्व-शांति, न्याय और स्वतंत्रता की बुनियाद है। अतः सम्पूर्ण मानवता की रक्षा के लिए विश्व समुदाय को खुलकर मानवता एवं मानवाधिकारों की रक्षा करनी होगी।

* * *

उत्तराखण्ड का जल–प्रलय

श्रद्धांजलि

अद्‌भुत प्राकृतिक सौंदर्य से शोभित उत्तराखंड स्थित विभिन्न मंदिरों में अन्य दिनों की तरह तमाम श्रद्धालूओं के मुखमंडल पर आस्था की एक चमक प्रतिविंबित हो रही थी। तमाम दर्शनार्थी एवं स्थानीय निवासी उत्तराखण्ड की प्राकृतिक सुषमा को निहारने और आस्था में पूर्णतः डूबे हुए थे, पर किसे क्या पता कि प्रकृति के उन लुभावने नजारों में छुपी डरावनी और दिल दहलानेवाली लीलाएँ भी हैं, जिसके रौद्र रूप को झेलना आसान नहीं है।

जून, 2013 में प्रकृति का रौद्र रूप तूफान, वर्षा, बाढ़, भू-स्खलन के रूप में उन केदारनाथ के दर्शनार्थियों एवं आस-पड़ोस के वासियों पर इस कदर बरपा कि पूरा केदारनाथ कस्बा मंदाकिनी, सरस्वती, मधु गंगा और क्षीर गंगा में एक साथ आयी बाढ़ की उफान से आस-पास का समस्त इलाका तबाह हो गया। अनगिनत लोग काल के गाल में समा गये।

इस प्राकृतिक त्रासदी का शिकार कुछ लोग मलवे में दबकर, कुछ जल के प्रलय-प्रवाह में बहकर, कुछ पत्थरों की चोट खाकर, कुछ भोजन के बिना तो कुछ पानी के बिना जान गंवा बैठे। धन्य है हिन्द की सेना के जवान जिन्होंने अपनी जान पर खेलकर उन बेसहारा फंसे हुए श्रद्धालुओं को सुरक्षा प्रदान की।

संभाव्य परिवार इस बेहद तकलीफदेह एवं शोक के क्षण में श्रद्धालुओं एवं उनके परिवारवालों के प्रति सहानुभूति प्रकट करता है तथा जल प्रलय में गुम हो गए श्रद्धालुओं और स्थानीय निवासियों को श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

संभाव्य परिवार।

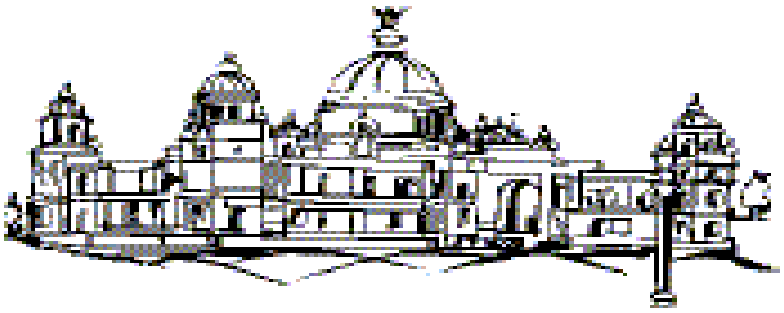

संपादकीय

पुरोवाक्

'संभाव्य' का यह अंक इस बात का सबूत है कि इस त्रैमासिक सृजन एवं समीक्षा में जीवनी शक्ति है, जिजीविषा है। इसके संस्थापक एवं प्रकाशनमंडल के सदस्यों में एकजटुता है, कर्त्तव्यनिष्ठता है। साथ ही यह आश्चर्य जनक एवं संतोषप्रद बात है कि आज के इस नफा-नुकसान एवं व्यापारिक युग में यह एक साहित्यिक एवं समालोच्य पत्रिका बिना किसी के आश्रयी हुए छपती जा रही है। इस पत्रिका का प्रकाशित होते जाना इस बात का भी स्पष्ट प्रमाण है कि इस यांत्रिक, व्यापारिक, राजनैतिक एवं नीति-नैतिकता को दर-किनार कर भाग-दौड़वाले इस युग में भी साहित्य के पाठक और प्रशंसक हैं तथा यह भी साबित होता है कि आदमी को बस रोटी, कपड़ा और मकान चाहिए और कुछ नहीं। इस पत्रिका का प्रकाशन इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि साहित्य आदमी के अन्दर किसी 'और कुछ' की तलाश है और रहेगी, इसके लुप्त होते ही आदमी पशु हो जायगा, बर्बर हो जायगा।

कोई ऐसा युग नहीं हुआ आज तक जो सृजन एवं समीक्षा की किसी पत्रिका के अनुकूल रहा है, चाहे वह पत्रकारिता के शिखर की पत्रिका 'सरस्वती' ही क्यों नहीं हो, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे अदम्य-उत्साह के संपादक ही क्यों न हों।

यह सही है कि कुछ पत्रिकाओं को सुविधा संपन्न एवं साहित्यिक अभिरूचि के संस्थापक, संरक्षक मिल गये, लेकिन ऐसा होना हमेशा ही एक विरल घटना है, अपवाद है।

कला संस्कृति के लिए विश्व-विख्यात खण्डहर के रूप में विद्यमान रहनेवाला नालंदा, विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालय का आसन बिहार में है, पर आज विकास मॉडल की घनघोर चर्चा के समय भी पत्रकारिता कहीं किसी कोने में पड़ी है। यूँ इसके लिए संस्थान हैं, इसके संचालन के लिए विद्वानों की टोली है, राजकोष है, पत्रकारिता दिवस है, पत्रकारिता से जुड़े एकाध-बात है कि उस दिवस के दिन सम्मानित व्यक्ति को सम्मान दिया जाता है। सारे ताम-झाम के बावजूद यहाँ पत्र-पत्रिकाओं का घोर अकाल है। शायद ही कोई पत्रिका प्रकाशित होती है जिसकी हिन्दी जगत में चर्चा होती हो। इस मामले में दिल्ली, मध्य प्रदेश, बंगाल आदि पत्रकारिता की ज्योति उजागर किये हैं।

यूँ तो पत्रकारिता का अब देश के लगभग सभी विश्वविद्यालयों, संस्थानों में प्राध्यापन है, शोध कार्य हैं, सुयोग्य प्राध्यापक हैं। पत्रकारिता की अतीत एवं वर्तमान-स्थिति के संबंध में दैनिक हिन्दुस्तान के 30 मई, 2013 के संपादकीय पन्ने में महामना मालवीय पत्रकारिता विद्यापीठ, काशी के प्राध्यापक डॉ0 राम मोहन पाठक का 'बदलते समय में पत्रकारिता' शीर्षक से एक आलेख छपा है। इस आलेख में उन्होंने लिखा है - 'पहले पत्रकारिता तप थी, त्याग था, जिद्द थी, जुनून था, सेवा थी, भूखे पेट खतरों से खेलते पत्रकारों की टोली थी। और अब तमाम सुख-सुविधाओं से लैस पत्रकारिता भोग-विलास है, पैशन है, एक मिशन की जगह प्रोफेशन है।'' इस लेख में इन्होंने लिखा है - ''पत्रकारिता की यही संकल्प शक्ति है, जीवनी शक्ति है कि तमाम विरोधी परिस्थितियों के बावजूद यह अभी तक अस्तित्व में है और अस्तित्व में रहेगी।''

पत्रकारिता त्याग एवं परिश्रम से चलती है, इसके एक प्रमाण के रूप में दैनिक हिन्दुस्तान के 5 मई के अंक में सरस्वती के संपादक के 'पूण्य स्मरण' शीर्षक के आलेख में श्री विश्वनाथ त्रिपाठी ने हजारी प्रसाद द्विवेदी के पत्र का हवाला देते हुए लिखा है कि सरस्वती के संपादक ने पत्रिका के लिए अपने को होम कर दियाा और उसे एक आदर्श पत्रिका बनाये रखा। वे सात वर्षों तक बिना एक दिन छुट्टी लिए पत्रिका के लिए काम करते रहे और अन्त में अनिन्द्रा के रोगी हो गये, अभाव में रहे और अभाव में गुजर गये।

इन दोनों आलेखों की चर्चा का उद्देश्य यह है कि कोई भी पत्रिका केवल संरक्षक, संस्थापक, संपादकमण्डल तथा तमाम सुविधाओं के बल पर न तो चलती है, न चुनौतियों या अभावों के कारण बन्द होती है। यह सबके श्रम और त्याग के बल पर होता है, वर्ना बिहार की अतिप्राचीन पत्रिका 'गंगा' के संरक्षक तो बनैली के राजकुमार कृष्णानन्द सिंह थे, संपादक राहुल संकृत्यायन थे, आचार्य नरेन्द्र देव जैसे सहालाकार थे। उसके बाद भी पत्रिका दीर्घजीवी एवं लोकप्रिय नहीं हो पायी। बिहार की दूसरी पत्रिका 'अवंतिका' के संचालक, संपादक अपने समय के विख्यात शिक्षाविद् एवं हिन्दी के आलोक स्मृति शेष श्री लक्ष्मी नारायण सुधांशु थे, संपन्न भी थे, लोकप्रिय भी थे, लेकिन वह पत्रिका भी अल्पजीवी रह गई। कोई भी पत्रिका छोटी हो या बड़ी टीम-स्पीरिट से चलती है, वर्ना धीरे-धीरे हर स्तर की पत्रिका दम तोड़ देती है।

'संभाव्य' अन्तरराष्ट्रीय स्तर की हिन्दी त्रैमासिक के संस्थापक, संरक्षक, संपादकमंडल, प्रकाशनमण्डल के सदस्य सब के सब हर मामले में सामान्य हैं। लागातार अंक का प्रकाशन इस बात का प्रमाण है कि इसके दीर्धजीवी होने की संभावना है। इस संभावना के मूल में बस इसके सब सदस्यों का तप और त्याग है।

किसी पत्रिका के प्रकाशन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कर्म यह होता है कि स्थानीय स्तर के रचनाओं एवं रचनाकारों को प्रकाश में लाना। ऐसा होता है कि पत्रिका के अभाव में एक से एक अच्छी रचना उस स्थान विशेष का कोई अपना सौन्दर्य, कोई अपनी विशेषता, उसकी पूरी प्रकृति सब स्थानीय स्तर पर ही गुम हो जाती हैं। जैसे छोटे से कमरे में कोई घुट कर रह जाता है।

अंग जनपद का उदाहरण लें तो यहाँ स्तरीय कवि, कहानीकार, नाटककार आलोचक हुए जिनका कोई अता-पता नहीं, सिवाय उनके परिवार, सगे-संबंधियों को छोड़कर। हिन्दी के कई रचनाकारों ने अपने क्षेत्र को अमर भी कर दिया है। इस संदर्भ में स्व0 फनीश्वर नाथ 'रेणु' का उदाहरण देना काफी है।

आज के माहौल में पत्रकारिता के धर्म एवं कर्त्तव्य, उद्देश्य एवं दायित्व बहुत गंभीर हो गये हैं। एक तरफ गाँव से लेकर महानगरों तक साक्षरता एवं जागरूकता तेजी से बढ़ रही है, वहाँ दूसरी तरफ उचित मार्गदर्शन एवं ज्ञानवर्धन के अभाव में कटुता, संकीर्णता, हिंसा भी बढ़ रही है। आज की पत्रकारिता महाभारत के विदुर की भूमिका में आ गई है। जैसे महाभारत के विदुर कहते हैं कि ''मैं दोनो हाथ उठाकर कह रहा हूँ कि यह युद्ध बड़ा सर्वनाशी है, इसे मत करो।'' पत्रकारिता के संदर्भ में भी विदुर इसलिए याद पड़ते हैं कि लोग जैसे विदुर को तटस्थ एवं धर्मनिष्ठ मानते थे वैसी ही बात आज पत्रकारिता के संबंध में है। आज के समय में आदमी-आदमी के बीच संकीर्णता एवं अज्ञानता इतनी बढ़ रही है कि लोग एक दूसरे का दुश्मन होते जा रहे हैं। उचित मार्गदर्शन के अभाव में आज चारों तरफ हिंसा एवं अनाचार का हाहाकार है।

उपरोक्त इन्ही सब कारणों से आज ''संभाव्य'' जैसी पत्रिका का सफल प्रकाशन होने में समाज के हर स्तर के लोगों का प्रोत्साहन अपेक्षित है। आशा एवं विश्वास है कि ऐसा ही होगा। यह पत्रिका अपने हर अंक में अपने धर्म का निर्वाह करती रहेगी।

आलेख

आओ छन्द बनें

डॉ. अश्विनी
संपादक, संभाव्य

वृक्ष का उगना-बढ़ना फूल एवं फल से लदना एक महान यज्ञ विधान है। बीज से वृक्ष तक की यात्रा एक सम्पूर्ण छन्दकी यात्रा है; वृक्ष स्वयं में एक छन्द विधान है, छन्द शास्त्र भी है, छन्द जीवन की अनिवार्यसत्ता एवं सत्य भी है, जीवन बोध तथा समाधान भी है। छन्द जीवन का अमृत तत्व है, मधुरता तथा शीतलता की अंतरंग चेतना शक्ति भी है, कुरूपताओं में सौंदर्य बोध है - मंत्र शक्ति एवं अखण्ड अनुष्ठान सूत्र है। छन्द दीवारों पर लिखे नारों की आधुनिक पहचान नहीं, एक सम्पूर्ण चिन्तन चेतना दिशा है जो सम्पूर्ण जीवन-जगत को बदलने की सामर्थ्य शक्ति लेकर उपस्थित है। यह परिवर्त्तन का अनुराग और अनुगुंज है, अखण्ड अभ्यांतर सत्ता शक्ति है, विकृत एवं कुत्सित मानसिकता के खिलाफ इन्कलाब है, बांसुरी का स्वर सामर्थ्य एवं सारस्वत साधना संदेश है। छन्द बोतलों की महफिल एवं घुंघुरुओं की गुफा में खोयी गूंगी वेदना है, वर्तमान की तलाश में वैज्ञानिक अनुसंधान है। छन्द सम्पूर्ण मानव कथा एवं अस्तित्वबोध है अक्षरों की द्रष्टा शक्ति एवं भाषा विज्ञान की आत्मा है।

यहाँ छन्द से अर्थ स्पष्ट होता है सरलता, विनम्रता, शिष्टाचार, आत्मानुशासन एवं सम्पूर्ण नैतिकता जिसका अभाव आज के परिवेष में चारों तरफ व्यापक है, यह छद्मछन्दता है और हम इसी स्थिति को जी रहे है। गीता में संदर्भ आया है - ''श्रेष्ठजनों का इतर जन हमेशा अनुकरण करते हैं''

आज फोकस और तिकड़म की कला में जो प्रवीण है वही सामाजिक है, वही धार्मिक है और वही मानवतावादी एवं राष्ट्रवादी है।

साहित्य समाज का दर्पण है और दर्शन भी, लेकिन आज साहित्य एवं पत्रकारिता अधोगामी यात्रा पर निकल पड़ी है। छद्मवेशी साहित्यकार, पत्रकार एवं बुद्धिजीवी अहंकार तथा आत्म प्रवंचना की अंधेरी गलियों में आत्म विज्ञापन एवं आत्म प्रकाशन के परचम लहरा रहे हैं। ऐसे ही ध्वजवाहकों एवं झंडा बरदारों ने सम्पूर्ण वातावरण में प्रदूषण का जहर घोल दिया है जिसका खामियाजा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आमलोगों को भुगतना पड़ रहा है।

भगवान बुद्ध ने इसी चिंता को रेखांकित करते हुए कहा था 'अगर समाज का नव निर्माण होना है तो हमें मनुष्यों को संसोधित करना होगा, प्रबुद्ध लोगों की संख्या बढ़ानी होगी और यह तभी संभव है जब सत् साहित्य का प्रणयण एवं शिक्षण की सही व्यवस्था हो, उसके प्रचार की नहीं, इसके अलावे और प्रक्रिया तात्कालिक और असरहीन होगी''

समतामूलक एवं एकतामूलक समाज और राष्ट्र की स्थापना की प्रक्रिया ध्वस्त होने लगी है, सौन्दर्य सत्ता स्थापना का सार सूत्र एवं बीज मंत्र आदमी भूलने लगा है। रूप, आकार एवं रंग का संयोजन ही सौन्दर्य है, ध्वनि एवं लय का संयोजन ही कविता, गीत, गजल, दोहे एवं संगीत-सौंदर्य है जिसका स्पष्ट अभाव ही छन्दहीनता है। आज सारा का सारा समायोजन टूटा हुआ है। अनर्गल एवं अश्लील वस्तुएं जाने-अनजाने हमारी प्राथमिकताएँ बन रही हैं, आयातित भौंड़े साहित्य एवं संस्कृति हमारे मानक मूल्य एवं जीवन शैली का अनिवार्य आयाम बनते जा रहे हैं, हम नाकारात्मक नैतिकता एवं नाकारत्मक मूल्य जीने को बाध्य हैं।

आदमी का तमतमाया चेहरा, लहूलुहान हाथ एवं उधार का व्यक्ति किसी अखंड समाज एवं राष्ट्र को सम्यक दिशा, एवं गतिशील नेतृत्व प्रदान नहीं कर सकता है। वैशाखी पर खड़ा व्यक्ति जो मौलिक चिन्तना एवं स्फुरणा की दरिद्रता जीने लगा है उससे किसी भी परिवर्तन की आशा नहीं की जा सकती है।

वर्तमान की सम्पूर्ण चिन्ता महात्मा गांधी के इस कथन में ध्वनित है - ''आज न दान की कमी है और न दानी की अगर कमी है तो पात्रता की''

समकालीन परिवेश वस्तुतः पात्रता-संकट से गुजरने लगा है जिसमें निरंतरता एवं धारावाहिकता का नितान्त अभाव है वही आज साहित्य, समाज तथा राष्ट्र का संवाहक और सूत्रधार बना हुआ है साहित्य और राजनीति का बाजारीकरण ऐसे ही लोंगों के सौजन्य से संभव हो पाया है। सम्बन्ध, भाईचारा और मित्रता का भी बाजारीकरण ऐसे ही लोगों की परमकृपा से संभव हो पाया है। शिक्षा से भिक्षा तक का बाजारीकरण व्यवस्था की उपलब्धि नहीं मानी जा सकती है। आदमी बाजार में जी रहा है और बाजार में ही मर रहा है, यह स्पष्टतः छन्दहीनता का प्रमाण है।

आदमी स्वयं में एक सम्पूर्ण छन्द है। जब आदमी का छन्द टूटता है तब दुर्घटनायें होती हैं। आज लगातार छन्द टूट रहा है इसलिये लगातार दुर्घटनायें हो रही हैं और हम इसी दुर्घटनाओं को जी रहे हैं।

बादल का बनना, बादल का दौड़ना-भागना, गरजना, बरसना, फूलों का खिलना, भौरों का गुनगुनाना, चिड़ियाँ का चहकना, तारों का टिमटिमाना, चाँद का खिलना, नदियों का बहना, झरनों का गुनगुनाना, लहरों का मंचलना सारी की सारी क्रियाएँ छन्दोबद्ध हैं। जन्म से मृत्यु, भोग से परमभोग, पदार्थ से उर्जा, शून्य से विराट, स्थूल से सूक्ष्म, धरती से आकाश, रात से दिन तथा सृष्टि से प्रलय तक की यात्रा सम्पूर्ण छन्द व्यवस्था विधान है - यहाँ तक कि गर्भ धारण तथा बच्चों का जन्मना, रोना-हँसना, चलना-फिरना, खेलना-कूदना, चिल्लाना-मचलना सभी क्रियाएँ छन्द विधान की सम्पूर्ण चेष्टा है। जब भी छन्द टूटता है दुर्घटना होती है।

छन्द सम्पूर्ण साहित्य तथा जीवन के गुणात्मक उत्कर्ष की प्रक्रिया है। साहित्य स्वयं में सम्पूर्ण छन्द है और छन्द किसी भी साहित्य की आत्मा है। साहित्य तीनों काल में व्यापक है और जो तीनों काल में व्यापक नहीं है वह साहित्य नहीं हो सकता। इन दिनों कुछ छुटभैये साहित्यकार तथा पत्रकारों ने साहित्य तथा पत्रकारिता की पवित्रता तथा गौरव गरिमा नष्ट करने का काम किया है। ऐसे व्यक्ति लिखास एवं छपास के रोग से पीड़ित और आक्रांत हैं। साथ ही साथ वे स्वयं को वामन का अवतार मानने लगे हैं। मुगालते में जीने वाले ऐसे ही छदमवेषियों ने साहित्य तथा समाज में मठवाद, पुरोधावाद, संरक्षणवाद, भाषावाद तथा उग्रवाद की सुदीर्ध परम्परा को परवान चढ़ाया है और चारो तरफ कुटिलता तथा अंधकार बाँटने की प्रतिबद्धता दिखाई है, उनका यह प्रयास प्रशंसनीय तथा सराहनीय नहीं माना जा सकता है।

ग्रंथियों में जीने वाले ऐसे साहित्य लेखक नाकारात्मक तथा निर्जीव साहित्य लेखन ही कर सकते हैं। उनके लेखन में जीवंतता तथा सजीवता नहीं होती, वे कुत्सित राजनीति के बलपर इतिहास होने का दंभ भरते हैं, लेकिन उन्हें पता नहीं होता कि इतिहास क्या है। वस्तुतः इतिहास तो सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्रक्रिया है, तथ्यों का पूर्ण विश्लेषण ही खोज है और वही खोज सम्पूर्ण इतिहास की आधारभूमि है। जहाँ गतिशीलता तथा क्रियाशीलता नहीं है वहाँ इतिहास नहीं है, वीभत्स तथा अनर्गल लेखन को साहित्य में कभी रेखांकित नहीं किया जा सकता है।

टाइप्ड लेखन को कभी भी बोधगम्य और कालजयी सृजन नहीं कहा जा सकता आज पठनीयता का अभाव देखा जा रहा है क्योंकि हम टाइप्ड लेखन करने लगे हैं, असाधारण तथा शिखर लेखन की धारा से हम अलग-थलग हो गये हैं। हमारी चिंतन प्रक्रिया कहीं से बाधित है इसलिए पठनीयता की त्रासदी से साहित्य तथा पत्रकारिता प्रभावित है। हम मशालेदार चटपटे चीजों को लोगों के सामने लगातार परोस रहे हैं और हमारी कोशिश है कि इन चीजों का लोगों पर स्थायी प्रभाव बने - कोई चमत्कार हो।

आज हम हायतौबा मचाने लगे हैं कि लगातार प्रिंट मीडिया पर इलोक्ट्रोनिक मीडिया का आक्रमण जारी है जिससे प्रिंटमीडिया के अस्तित्व पर खतरा बढ़ गया है। मैं इसे खतरा बिल्कुल नहीं मानता - इसको चुनौती मानता हूँ - चुनौती आदमी को गतिशील तथा धारावाहिक बनाता है। गीता में श्री कृष्ण ने कहा है - ''लाइफ इज ए चैलेंज, एसेप्ट इट''।

हमें खड़ा होना है अपने पाँव पर तभी सम्पूर्ण पात्रता के साथ हम अपनी प्राथमिकतायें सिद्ध कर सकते हैं। साहित्यकार तथा पत्रकार को स्वयं में एक महाद्वीप बनना होगा - उन्हें असाधारण यात्रा पर निकलना होगा तभी वह अखंड द्वीप बन सकता है।

आज तथाकथित समीक्षक कूड़े कचरे को भी उत्कृष्ट साहित्य प्रमाणित करने के लिये अनर्गल तर्क देते हैं और अपनी अस्मिता को बेचते और खंडित करते हैं।

आज के संदर्भ में एक अद्वितीय गतिशील शिखर साधक, जीवित राष्ट्रीय आदर्श और सम्पूर्ण चरित्र की परम आवश्यकता है जो सम्पूर्ण सामाजिक परम्परा चेतना के प्रतिनिधि और उदघोष बने और अखंड सम्यक मूल्यों और साकारात्मक नैतिकता की रक्षा में अपनी निर्णायक भागीदारी निभाये।

इसी चिंता को स्पष्ट करते हुये स्वामी विवेकानंद ने कहा था - ''किसी भी व्यक्ति, किसी भी समाज, किसी भी धर्म और किसी भी राष्ट्र का एकांगी विकास नहीं होना चाहिये'' स्वामी जी के उक्त कथन की मूल चिंता चारों तरफ व्याप्त है - एकांगी विकास यात्रा शुरू है जो खतरनाक स्थिति है।

अतिव्यक्तिवादिता, अवसरवादिता, हिंसक महत्वकांक्षा और आत्म विज्ञापन से आकांत व्यक्ति ही सच को झूठ और झूठ को सच साबित करने की कलाबाजी में लगे हुये हैं। इनमें पात्रता नहीं होती। पात्रता ही सम्पन्नता है और पात्रता का अभाव ही विपन्नता है - दरिद्रता है।

पात्रता स्वयम् में एक सम्पूर्ण छन्द है और छन्द हीं स्वयं में सम्पूर्ण पात्रता है - एक गूँज है, एक पुकार है और समग्र अस्तित्व चिन्तन भी।

आज विश्व और सम्पूर्ण राष्ट्र बाजारीकरण और उदारीकरण की चिन्ता से परेशान और हतप्रभ है। बाजारीकरण और उदारीकरण से हमारा तात्पर्य यह कतई नहीं बने कि अपराध, भ्रष्टचार, विसंगति और अमानवीयता का हमारे राष्ट्रीय जीवन में तालमेल हो, अगर ऐसा होता है तो हम अपनी अस्मिता चेतना के बल पर जरूर खड़े होंगे और सम्पूर्ण चेष्टा से ऐसे विकृत प्रयास की सम्भावना को नष्ट करने को प्रतिबद्ध होंगे, क्योंकि हमारी एकता और अखण्डता छन्द की सीमा में आबद्ध है।

साहित्य तो अमृत है - संजीवनी भी, वसन्त की मोहकता-गति-लय तथा स्वर माधुर्य भी और जीवन सन्देश भी सृजनता का उदय ही सौंन्दर्य और आनन्द सत्ता का उद्घोष है, जागरण मंत्र और सम्पूर्ण समिधा शक्ति है। छन्द ही धर्म है - विज्ञान है, आत्मदृष्टि तथा मूल्य है ओर सम्पूर्ण सौन्दर्य विधान है। किसी ने ठीक कहा है - सौन्दर्य ही सत्य है और सत्य ही सुन्दर, सत्य ही छन्द है और छन्द ही सत्य है।

अस्तु, उठो मित्रो! देखो, पहचानो! तुम स्वयम् में एक छंद हो - सम्पूर्ण प्रकाश की सम्भावना हो, प्रकाश का अभाव ही अंधकार है, क्यों भटक रहे हो अंधेरी गुफाओं में। बाहर आओ निर्विकार और निर्विकल्पक हो कर संगीत सुनो और सागरकी अतल गहराइयों में गोते लगाओ। तभी निकाल पाओगे कुछ छंद, गीत, गजल और दोहे, जिसमें सम्पूर्ण उद्घोष की पात्रता और अखण्ड राष्ट्र की अस्मिता रक्षा की प्राथमिकतायें हैं।

लघु - शोध

अंगप्रदेश का हिन्दी साहित्य

डॉ. अमरेन्द्र
भागलपुर

भागलपुर का हिन्दी साहित्य। इसका अर्थ अंगप्रदेश का हिन्दी साहित्य नहीं है, क्योंकि पुराण और तंत्र साहित्य में अंगप्रदेश की सीमा बढ़ती हुई भुवनेश्वर तक फैली हुई है। एक सीमा तक भागलपुर का हिन्दी साहित्य चम्पा का हिन्दी साहित्य अवश्य कहा जा सकता है, क्योंकि इतिहासग्रन्थों से इसका स्पष्ट पता चलता है कि चम्पा उत्तर में कोशी-पूर्णिया अंचल से लेकर दक्षिण में मंदार से आगे अवश्य ही संताल परगना तक व्याप्त थी।

इस क्षेत्र की मुख्य लोकभाषा अंगिका को आधार बनाते हुए पहली बार भागलपुर का राजनीतिक अस्तित्व 1993 में आया, जिसमें आज के भागलपुर, पूर्णिया, कोशी, मुंगेर और नवगठित झारखण्ड राज्य का पूरा संताल परगना प्रमंडल समाहित है। आजादी के बाद जब भाषा के आधार पर प्रान्तों के सृजन की बात उठी तब पणिक्कर समिति की रिपोर्ट पर अंगिका भाषा के आधार पर उसी भूभाग को भागलपुर जिला बनाया गया, जो 1993 का था। फर्क कुछ आया तो पूर्णिया के एक हिस्से को काटकर बंगाल में मिला दिया गया।

'भागलपुर का हिन्दी साहित्य' आजादी के पूर्व और आजादी के बाद राजनीतिक भूगोल पर आधारित भागलपुर का हिन्दी साहित्य ही है, जो साहित्य अपने आप में इतना विस्तृत और समृद्ध है कि उसे एक आलेख में समेटना अंजुली में गंगा, कोशी, मयूराक्षी को समेटने जैसी बात है। इस प्रदेश में साहित्य-लेखन की सुदीर्घ परम्परा को तो इसीसे समझ ले सकते हैं कि हिन्दी साहित्य का प्रथम परिच्छेद ही भागलपुर की भूमि पर लिखा गया है और हिन्दी के आदिकवि सरहपाद, जिनकी काव्य भाषा अंगिका को पंडित राहुल सांकृत्यायन ने पुरानी हिन्दी स्वीकार किया है, वह भी भागलपुर के ही निवासी थे, जिनकी काव्यभाषा पुरानी अंगिका, पुरानी हिन्दी, अवहट्ट आदि के रूप में चिन्हित होती हुई आखिर नई हिन्दी, खड़ी बोली में परिणत हो गई है। ई. 600 से लेकर ई. 1000 तक तो या इससे भी आगे बारहवीं शती तक भागलपुर का हिन्दी साहित्य वही पुरानी हिन्दी या पुरानी अंगिका के साहित्य का इतिहास है, जिसका सृजन विक्रमशील के सिद्धों, (जिनका संबंध नालन्दा बौद्ध विहार से भी रहा था) ने लिखा था, जिसे चर्यापद के नाम से जाना गया है। ये सिद्ध कवि, आदिकवि सरहपाद के अतिरिक्त हैं - भुसुकपा, शबरपा, शांतिपा, विनयश्री, लुचिकपा, जयन्तपा, निर्गुणपा, पुतुलिपा, चेलुकपा, चम्पकपा, नारोपा, लुईपा, डोम्भिपा, वीणापा, दीपंकर श्रीज्ञान, चर्मटीपा, धम्मपा, मेकोपा।

प्राप्त जीवन वृतान्त, घटनाओं और काव्यभाषा से ज्ञात हो चुका है कि इन सिद्ध कवियों की साधनाभूमि ही नहीं, जन्मभूमि भी भागलपुर ही रहा है। यूं काव्यभाषा और विक्रमशील में प्राप्त चौरासी सिद्धों की मूर्तियाँ इस धारणा को खंडित नहीं करती हैं कि और भी कई सिद्ध कवियों का जन्मस्थान या तो अंगप्रदेश ही था या फिर विक्रमशील। विहार उनकी साधना का केन्द्र था।

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में भी भागलपुर का साहित्य सिद्धकाल की तरह ही मजबूत होगा, लेकिन इस प्रदेश के साहित्य की उपेक्षा आरम्भ से ही हो गई थी। सिद्धों के साहित्य को संप्रदाय का साहित्य कह कर नकारा गया, जिसका प्रभाव इस प्रदेश के मध्यकाल में रचे गए साहित्य पर भी पड़ा। जाने-अनजाने चम्पा के साहित्य पर विचार करना साहित्य-समीक्षकों ने महत्वपूर्ण नहीं समझा। परिणाम यह हुआ कि समय के प्रवाह और संरक्षण के अभाव में भागलपुर के मध्यकालीन साहित्य की परम्परा छिन्न-भिन्न हो गई और जिस कारण इसका ठीक-ठीक से ज्ञान नहीं हो पाता।

अवहट्टकवि विद्यापति के जन्म स्थल के संबंध में विवाद हो सकता है, लेकिन उनका कर्मक्षेत्र भागलपुर के तत्कालीन उत्तरी हिस्सा सहरसा का राजदरबार ही रहा, इसमें कोई विवाद नहीं। पर विद्यापति से अलग 10वीं शती से लेकर 18वीं शती तक के साहित्य का इतिहास नहीं के बराबर उपलब्ध है। जिन कवियों के संबंध में जानकारी मिलती है, उनकी रचनाओं का भी ठीक-ठीक पता नहीं चलता। इन कवियों में हेमकवि (सहरसा), कृष्ण कवि (सहरसा), भूधर मिश्र (मुंगेर), भृगुराम मिश्र (मुंगेर), अचल कवि (सहरसा), ऋतुराज कवि (सहरसा), होख किफायत (पूर्णिया), कुंजन दास (मुंगेर), कृष्ण कवि (सहरसा), जगन्नाथ (मुंगेर), जॉन क्रिश्चियन (सहरसा), लक्ष्मीनाथ परमहंस (सहरसा), वेदानन्द सिंह (पूर्णिया), प्रमुख हैं। चूँकि इस काल के अनेक कवियों पर स्थान-मोह से विवेचन की प्रमुखता रही, यही कारण है कि भागलपुर के कवियों की काव्यभाषा में समानता तो उन्हें दिखी, लेकिन उनके जन्मस्थान को लेकर निर्णायक भूमिका में नहीं रहे। इसके पीछे का कारण भागलपुर के भूगोल से उनकी अनभिज्ञता भी थी। इसे दसवीं शती के सिद्ध कवि तन्तिपा के संबंध में विचारकों की धारणाओं से भी समझ सकते हैं। महापंडित राहुलजी ही इनका जन्मस्थान एक स्थान पर मगध (बिहार) मानते हैं, तो दूसरे स्थान पर 'सोधी नगर', और तीसरे स्थान पर उज्जैन (अवन्ती देश) हजारी प्रसाद द्विवेदी भी उज्जैन (अवन्ती देश) ही स्वीकारना उचित समझते हैं। लेकिन इस क्रम में विद्वान

यह विचारना भूल ही गये कि विक्रमशिला विहार के तन्तिया भागलपुर के उजानी के कवि भी हो सकते हैं, 'उजानी' जो लोकगाथा की नायिका बिहुला का नैहर है। नाम की समानता के कारण ही उजानी को उज्जैन समझ लिया गया लगता है। जो हो, इस काल के कवि श्याम सुन्दर की रीतिवादी कविताएं ही अकेले भागलपुर के मध्यकालीन साहित्य की प्रतिष्ठा सुरक्षित रखने में सक्षम है, जिसकी धारा गिद्धौर नरेशों की कविताओं तक देखी जा सकती है।

भागलपुर के हिन्दी साहित्य के संवर्द्धन के नरेशों की निस्संदेह विशिष्ट भूमिका रही है, जो कवियों के आश्रयदाता ही नहीं, स्वयं रससिद्ध कवि भी रहे। इन कवियों में महाराजाधिराज रावणेश्वर प्रसाद सिंह, कुमार गौरी प्रसाद सिंह, कुमार गुरु प्रसाद सिंह, कुमार रणवीर सिंह 'नेह' हैं।

इन नरेशों के अतिरिक्त 17वीं शती से 20वीं शती के मध्य तक के हिन्दी साहित्य के विकास में कुमार वागीश्वरी प्रसाद सिंह, ठाकुर छत्रधारी सिंह, ठाकुर अयोध्या प्रसाद सिंह, राय साहब मथुरा प्रसाद सिंह, ललित किशोर सिंह के नाम प्रमुख हैं, जिन कवियों का जमुई से संबंध था।

इन सभी कवियों ने प्रेम-श्रृंगार और भक्ति की रचनाएँ रीतिकाव्य की परम्परा में की हैं। कुछ आलोचक इनकी काव्यभाषा को ब्रज भाषा मानते हैं। ऐसा मानने के पीछे सिद्धों की काव्यभाषा को भूल जाना है। सिद्धों की काव्यभाषा पुरानी अंगिका का रूप है। जहाँ आधुनिक अंगिका में हैबिचुअल यानी नित्यप्रवृत वर्तमानकालिक क्रिया पद में 'छै' सहायक क्रिया जोड़ने की प्रधानता है, वहाँ पुरानी अंगिका में 'छै' का प्रयोग नहीं है। चर्यापदों में मणइ, गढ़इ, बहए, बूझइ जैसे हैबिचुल क्रिया पद ही आते है। 10वीं शती से 20वीं शती के मध्य तक सिद्धों की पुरानी अंगिका ही अंगिका कविता पर छाई रही है, इसे हम गिद्धौर नरेशों के काव्य से ही नहीं, भागलपुर के दक्षिण क्षेत्र के कवि दर्शन दूबे के कवित्तों से भी समझ सकते हैं।

यूं तो भारतेन्दु युग में खड़ी बोली के गद्य के श्रेष्ठ उदाहरण रखनेवाले पं. जगन्नाथ चतुर्वेदी अंगप्रदेश के जमुई जिला के ही थे, लेकिन भागलपुर में खड़ी बोली में सृजन कुछ अवधि बाद ही हुआ, और जब हुआ तो एक अथक यात्रा के साथ। निस्सन्देह इस साहित्य में काव्य की संख्या ही अधिक है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की कालजयी कृतियाँ अंगप्रदेश के तत्कालीन भागलपुर की भूमि पर लिखी गई। दिनकर की काव्य यात्रा में-वीरवाल, वारडोली विजय, प्रणभंग, रेणुका, हुंकार, रसवन्ती, द्वन्द्वगीत, कुरुक्षेत्र, बापू, रश्मिरथी, इतिहास के आँसू, दिल्ली, नीम के पत्ते, धूप और धुआं, उर्वशी, हारे को हरिनाम हैं।

सिर्फ मुंगेर में ही कई-कई महाकाव्य के रचयिता कई महाकवि हुए हैं। इनमें पंडित अवध भूषण मिश्र और महाकवि तिलक के नाम बड़े आदर के साथ लिये जाते हैं। पं. अवधभूषण कृत अकबर, विश्वपुरुष लेलिन, ये दो महाकाव्य तो प्रकाशित हैं, लेकिन दमयन्ती, गुरु गोविन्द सिंह, ये दो अप्रकाशित महाकाव्य हैं। कालिदास, निराला, बांग्ला देश, अपराजिता आम्रपाली, तिलक रामायण, ये छः महाकाव्य के रचयिता हो गये हैं। मुंगेर के अन्य प्रमुख कवियों में आलोकधन्वा, रॉबिन शॉ पुष्प, सियाराम प्रहरी, छन्दराज, शिवनन्दन सलिल, राजेश, शहंशाह आलम, रामदेव भावुक, रमेश नीलकमल, दारोगा शर्मा, शैल शिखर, कामेश करुण, उमेश मोहन गुप्त, मधुसूदन आत्मीय, श्याम दिवाकर, प्रणय प्रियंवद, अनिरुद्ध सिन्हा, विजेता मुद्गलपुरी हैं। बहुचर्चित प्रकाशित काव्यों में - करखनिया तरंग (दुर्गा प्रसाद मुकुर), सुबह का चांद (शैलशिखर), गूंजते स्वर, ज्योति किरण, महासती शैव्या (सियाराम प्रहरी), दर्द की फसलें (छन्दराज), धरती गाती है (कामेश करुण), इस सदी का प्रेम पत्र (श्याम दिवाकर), तिनके भी डराते हैं (अनिरुद्ध सिन्हा) हैं।

इससे अलग, आधुनिक युग में एक ओर जहाँ मुंगेर के कवियों में महाकवि अवधभूषण मिश्र, मुचकुन्द शर्मा, सियाराम प्रहरी, छन्दराज, प्रणय प्रियंवद, अनिरुद्ध सिन्हा, कामेश करुण, शहंशाह आलम की लोकप्रियता अत्यधिक रही है, वहीं उत्तरी भागलपुर के कोशी अंचल में कमला प्रसाद बेखबर, डॉ. मधुकर गंगागधर, सकलदेव शर्मा, जनार्दन यादव ने कविता की कोशी को निरन्तर गतिशील रखा है। कोशी अंचल की प्रमुख काव्यकृतियों में वियोग (लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु), उन्नीस सौ पचहत्तर, कविता की वापसी (मधुकर गंगाधर), गनगुआर (कमला प्रसाद बेखबर), दरकती जमीन, काव्यांजलि (कैलाश झा किंकर), अर्चना, आनन्द, एक बनजारा विजन में (हरिशंकर श्रीवास्तव शलभ), गीत-गंध, मैं तो तेरे पास में (अमोघ नारायण झा), कल्पा (रमेश चन्द्र वर्मा), मेरे शब्दों में (जोगेश्वर जख्मी), साधना, आंजनेय भारत (युगल शास्त्री प्रेम), सत्य हिन्दी अमरकोष (सहृदयनारायण पोद्दार 'सत्य'), रुद्रवेणुका (परमेश्वरी प्रसाद मंडल), अंगुत्तराप के हास-व्यंग्य के कवि परमेश्वर गोयल के लगभग एक दर्जन हास्य-व्यंग्य के कविता-संग्रह प्रकाशित हैं। इसके अतिरिक्त धूप के फूल, अब तक गिने नहीं गये पेड़ (भोला पंडित प्रणयी), कैद हैं स्वर सारे, एक और दुनिया के बारे में (अरविन्द श्रीवास्तव), सफर (जनार्दन यादव) प्रमुख हैं।

बीसवीं शती में दक्षिणी भागलपुर के आधुनिक काल में जिन कवियों को नयी पहचान दी, उनमें बुद्धिनाथ झा कैरव, डॉ. श्याम सुन्दर घोष, डॉ. मधुसूदन साह, डॉ. डोमन साहू समीर, सुमन सुरो, डॉ. मोहनानन्द मिश्र, वेदप्रकाश वाजपेयी, डॉ. शंकर मोहन झा, पंकज प्रमुख हैं। आधुनिक काल के भक्त कवियों में - महर्षि मेँहीं, भवप्रीता ओझा, संत चन्दर दास, चामू कमार की भक्ति रचनाएँ इस अंचल में अत्यधिक लोकप्रिय रही हैं। 'डगर पर' (1990) सुमन सूरो के सन्तावन गीतों का संग्रह है। अन्य प्रमुख काव्यकृतियाँ हैं - पलकों की पाँखुरी,

महुआ महावर, शब्दों की पीड़ा, मुट्ठी भर मकरन्द (डॉ. मधुसूदन साहा), एक दीप मेरा भी (डॉ. डोमन साहु 'समीर'), ज्वाल संकल्पित, जुआघर, एक शंख मेरे हाथों दो, अरण्यायन (डॉ. श्याम सुन्दर घोष), गीत संगम, बहुत है (डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव)।

आधुनिक युग में मुख्यालय भागलपुर में जिन श्रेष्ठ काव्य-कृतियों को सृजन छायावाद काल से आजतक प्रकाशित हुआ है, उनमें प्रमुख हैं - अनुभूति, अर्न्तध्वनि (जनार्दन प्रसाद झा द्विज), सुहाग, युगवाणी, अनल वीणा, मालिका, बीज और अणु (माहेश्वरी सिंह महेश), ये शूल फूल (रामेश्वर झा द्विजेन्द्र), पर गूंज रह जाती है, आरे बदरा कारे बदरा (नन्द किशोर), दीपाराधना, घास के फूल, चित्रशाला, जाहन्वी, पल्लवी, संजीविनी, वैतालिका, श्रीजिता, आदि भागीरथी (आनन्द शंकर माधवन), कृष्णायन (चन्दर दास), ये शूल फूल (रामेश्वर झा 'द्विजेन्द्व), ये सम्पुट सीपी के, युगमानव बापू, सागरमाथा (डॉ. कुमार विमल), नीलाभ, बरसात (वारिद), मानस मूर्छना (रामसेवक चतुर्वेदी), गांधी गीता, उषा, दुर्गाचरितामृत (दामोदर शास्त्री), कैकेयी का अन्तर्द्वन्द्व (श्रीउमेश), राजा परीक्षित, नीलिमा, पतिम्बरा, सावित्री (गौरीशंकर मिश्र द्विजेन्द्र), किरणों का हरकारा (मधुर कमल), यातनागृह (देवेन्द्व), भोर (प्राण मोहन प्राण), सूर्यग्रहण (तपेश्वरनाथ), अंधेरी घाटियों के बीच (अनिरुद्ध प्रसाद 'विमल'), जवाहरलाल नेहरू, जाग पहरुआ, इंदिरा गाँधी (इन्दुभूषण नेहरू), सुबह होने तक, इक्कीसवीं सदी (अंजनी कुमार विशाल), क्षितिज का चाँद (अश्विनी), बहुत अंधेरा है (खुशीलाल मंजर), जनतंत्र का 'विक्रमशिला', देहरी पर दीया, पीर का पर्वत पुकारे, मन गोकुल का गाँव, द्वार के पार, काँटे कुछ कचनार, दीपक मेघ हिण्डोल, (डॉ. अमरेन्द्र), त्रिशूल, द्वैतांगनी (कनक लाल चौधरी 'कणीक'), जब-जब झरे श्रृंगार (आभा पूर्वे), मूंगा-मोती-मनका, आकशगंगा की छाँव में, बरसे अमृत भींगे धरती (धनंजय मिश्र), भाव प्रसून, मधुरिका, आंगन-आंगन दीप, द्वार पुकारे प्यार (रामधरी सिंह काव्यतीर्थ), फिर कभी नहीं (मनाजिर अशिक हरगानवी), मधुमास में फूल, भिक्षुणी (विजय कुमार मेहता), हवा के खिलाफ (डॉ. रविन्द्र नाथ रवि) हकीकत अंदाजे बयां (राजेन्द्र प्रसाद मोदी), सवाल की नोक पर (अनामिका), ठहरा हुआ समय (नवीन कुमार राय) और लौ जलती रही (मयंक मीनकेतन), अष्टपदी (रामप्रकाश स्नेहिल), अतिरथी अंगोष कर्ण (नंदलाल यादव सारस्वत) ऐसी काव्य-कृतियाँ हैं, जो काव्य के विभिन्न रूप ही नहीं प्रस्तुत करतीं, काव्य के सौन्दर्य से भी ये उदात्त हैं।

न केवल खड़ी बोली में सृजित यहाँ की काव्य-यात्रा विस्मित करनेवाली है, बल्कि इसकी कथा-यात्रा भी। आज से दशकों पूर्व जब चेतना प्रवाह की शैली में प्रो. कृपानाथ मिश्र ने 'प्यास' उपन्यास लिखा था, जब विद्वान समालोचक नलिन विलोचन शर्मा ने इसकी भूरी-भूरी प्रशंसा की थी। इसके बहुत पूर्व भारतेन्दु काल में ही जमुई के प्रख्यात लेखक जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने वसन्त मालती, संसारचक्र, तूफान, विचित्र, विचरण, विचित्र वीर जैसे चर्चित उपन्यासों को सिरजा था। इसी समय ठाकुर अयोध्या प्रसाद लिखित 'ललित मनोरमा' भी कम लोकप्रिय उपन्यास नहीं था। भागलपुर का उपन्यास साहित्य राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा के केन्द्र में रहा है, उत्कृष्टता की दृष्टि से निर्वासिता, समाज की वेदी पर, साकी, ज्योतिर्मयी, रूपरेखा, सविता, मीमांसा, वे अभागे, दस बीघा जमीन, ज्वाला, आवारों की दुनिया, दर्द की तस्वीरें, बुझने न पाय, रक्त और रंग, अभियान का पथ, केन्द्र और परिधि, तूफान और तिनके, उत्तर पुरुष (अनूपलाल मंडल), मैला आंचल, परती परिकथा (फणीश्वर नाथ रेणु), मोतियों बाले हाथ, यही सच है, फिर से कहो, उत्तर कथा, सुबह होने तक, सातवीं बेटी, गर्म पहलूओं वाला मकान (मधुकर गंगाधर), महकार (कमला प्रसाद बेखबर), बंद कमरे का सफर, देह यात्रा, जागी आँखों का सपना, खुशबू बहुत है, दुलहन बाजार, गिरती दीवारे, काँपती आँखें, (राबिन शॉ पुष्प), पलटनिया, चिरंजीव, शीर्षक, जीबछ का बेटा बुद्ध, माँ, दाह (चंद्रकिशोर जायसवाल), काली सुबह का सूरज, पंचमी तत्पुरुष, माँटी पानी आकाश (रामधारी सिंह दिवाकर), अनामंत्रित मोहमान, प्रसव-वेदना (आनन्द शंकर माधवन), तुल्ला बाड़ी (सकलदेव शर्मा), तुम फिर आना, सलमा, जिन्दाबाद-मुर्दाबाद (गौरी शंकर राजहंस), शेष फिर, सफेद गिद्ध (श्रीकेशव), सूली ऊपर सेज (रीता सिन्हा), कर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे (भगवानचंद्र घोष), सिरहाने का इन्द्रधनुष, आओ न कक्का, तिल्लो, जलकुंभी, केंचुअ, अनछुआ आकाश (मधुर कमल), मरुद्वीप (सुरेन्द्र प्रसाद साह), तुम्हारे हिस्से का चाँद, महुआ घटबारिन (शिवकुमार शिव), आमुख कथा (देवेन्द्र सिंह), अगिनदेहा, नटुआ दयाल (रंजन) सलेस भगत (डॉ. अमरेन्द्र) लचिका रानी (अनिरुद्ध प्रसाद विमल) लचिका रानी (डॉ. विद्या रानी) बिहुला विषहरी, चरखा क्या बोले (डॉ. मीरा झा) हिरनी बिरनी (डॉ. मृदुआ शुक्ला) वृजाभार (चन्द्रप्रकाश जगप्रिय) रेशमा चोहड़मल (दिनेश तपन) प्रायश्ति (प्रतिभा राजहंस) शेष शिनाख्त, रमण दा (सुरेन्द्र प्रसाद यादव) जैसे उपन्यासों का महत्व असंदिग्ध है। तीस सो छत्तीस पृष्ठों का 'कर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे' जहाँ भागलपुर के पश्चिमी अंचल के जीवन को रेखांकित करता है, वहीं तीन सौ पचहत्तर पृष्ठों का उपन्याय 'तुम्हारे हिस्से का चाँद' सम्पूर्ण अंगजनपद के सामाजिक आर्थिक धार्मिक जीवन से जुड़ता है। इसीतरह 'अगिनदेहा' समाज के विशिष्ट वर्ग की जीवन-शैली, समृद्धि के बीच दीनता, भीड़ के बीच अकेलापन और अवचेतन के विस्फोट को लेकर लिखा गया इक्कीसवीं सदी का इकलौता उपन्यास है। अभी सुजाता चौधरी का भी एक उपन्यास 'दुख भरे सुख' का प्रकाशन हुआ है 'कश्मीर का दर्द' और 'दुख ही जीवन की कथा रही' इनके अन्य लोकप्रिय उपन्यास हैं।

कोई शक नहीं कि कथा-साहित्य के अन्तर्गत मुख्यालय भागलपुर से प्रकाशित कहानी-संग्रहों की संख्या उपन्यास से कहीं ज्यादा फैली हुई है और कला

की श्रेष्ठता से ज्यादा कसा भी, जिसकी शुरुआत जनार्दन झा 'द्विज' से ही शुरू हो गई थी। राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय और चर्चित कहानी-संग्रहों में गुलाब की कलियाँ, रसरंग (लक्ष्मीनारायण सुधांशु), वेणी, विभूति, मधुमयी (जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज'), उजली रेखाएँ, आना एक बी. आई. पी. का (गौरी शंकर राजहंस), आधुनिकता, पाप की हत्या (तारकेश्वर प्रसाद), सूना आकाश (श्रीकेशव), देहदाह, जूत, दहलीज, मुक्ति (शिव कुमार शिव), गांधी जी नहीं रहे (शीतल अवस्थी), आखरी कैफियत के बाद, अंजुरी भर राख, एक थी शकुन दी (सच्चिदानन्द धूमकेतु), ग्यानूड़ी (सदाशिव सुगंध), तिरहुतिया, भोज, लोककथा की द्रौपदी (देवेन्द्र सिंह), टीस का स्वाद (तपेश्वर नाथ), शिरीष की सुधा, चन्दन जल न जाए (आभा पूर्वे), मगरी, खड़सिंगी (सुरेन्द्र प्रसाद यादव), कलाकार का जन्म (सुधाकर), अपना सच (कांता सुधाकर), बबूल के फूल, गंगा की कोख (रामकिशोर), इस्तीफा (राजेश सहाय), मुखौटे (अरविन्द कुमार), अन्दर-बाहर (ओम-सुधा), काला दिन (उमाकांत भारती), आज का बाल्मीकि (नीलम महतो), तुम लौट जाओ वसन्त (मृदुला शुक्ला), डंडीर, अरे जाने दो (पी. एन. जायसवाल) नीले निशान (डॉ. विद्या रानी) मर्द ऐसे ही होते हैं मर्द (सुजाता) प्रमुख हैं। और मुंगेर के कथाकार रॉबिन शॉ पुष्प कृत आक्रोश, अग्निकुंड, अंधे आकाश का सूरज, सफेद अंधकार प्रमुख हैं, लेकिन भागलपुर का कथा साहित्य एकदम आधुनिक समय में मुख्य रूप से कोशी-अंचल के राजकमल चौधरी, रामधारी सिंह दिवाकर और चन्द्रकिशोर जायसवाल के कहानी साहित्य के कारण ही चर्चा में रहा है, इसमें कोई शक नहीं। इनके कहानी-संग्रहों में मछली मरी हुई, अग्नि स्नान, बीस रानियों का बायस्कोप, नदी बहती थी, देह गाथा (राजकमल चौधरी), अलग-अलग अपरिचय, बीच में टूटा हुआ, नया घर चढ़े, सरहद के पार, धरातल, मखान पोखर (रामधारी सिंह दिवाकर), मैं नहिं माखन खायो, मर गया दीनानाथ, हिंगना घाट में पानी रे, नकबेसर कागा ले भाग, तर्पण, आघात पुष्प (चंद्रकिशोर जायसवाल) हैं। जनार्दन यादव का कहानी-संग्रह प्रेमचंद युग की कथा-प्रवृतियों से चल कर साठोत्तरी, सत्तरोत्तरी कथा-प्रवृतियों से बड़ी सशक्तता के साथ जुड़ते हैं।

जहाँ तक मुख्यालय भागलपुर का आलोचना साहित्य की बात है, यह इसके कथा या काव्य साहित्य की तरह घना तो नहीं है, लेकिन प्रेमचंद युग में ही जनार्दन झा 'द्विज' ने जिस आलोचना पुस्तक 'प्रेमचंद की उपन्यास कला' को लिख कर हिन्दी साहित्य को चौका दिया था, उसकी चमक आज भी शेष नहीं हुई है। वैसे आलोचना साहित्य का विकास वास्तविक रूप से साठ के दशक में ही जाकर हो सका। राष्ट्रकवि दिनकर, दिनकर का कुरुक्षेत्र, मघदूत और कालिदास, बाल्मीकि रामायण का काव्यानुशीलन (डॉ. शिवबालक राय), छायावाद का छंदोशीलन, छन्दोदर्पण (डॉ. गौरीशंकर मिश्र), बिम्बविधान (डॉ. शिवनन्दन प्रसाद), दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि, भागलपुर जिले की भाषा : एक वैज्ञानिक अध्ययन, बोध और व्याख्या (डॉ. कामेश्वर शर्मा), भाषा : सन्दर्भ (राधाकृष्ण सहाय), साहित्य चिन्तन, साहित्य अनुशीलन, साहित्यायन, हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित, भक्तिरस शास्त्र, राष्ट्रीय साहित्य के आठ अध्याय (डॉ. तपेश्वरनाथ), आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य, आधुनिक हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव और विकास (डॉ. बेचन), काव्य और कसौटी, भाषा और साहित्य (डॉ. अमरेन्द्र), निराला साहित्य में व्यंग्य (डॉ. प्रतिभा राजहंस), डॉ. अमरेन्द्र की गजलों का आलोचनात्मक अध्ययन (डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी), हिन्दी काव्य में ऋतु (डॉ. हरगानवी/ई. विनोद चौधरी), हिन्दी गजल का व्याकरण (अशअर उरैनवी) आदि आजादी के बाद लिखे गए प्रमुख आलोचना-ग्रंथ हैं। मुख्यालय से अलग भागलपुर के विभिन्न भागों में समालोचना ग्रंथों का सृजन कम नहीं हुआ है। इन ग्रंथों में-काव्य में अभिव्यंजनावाद, जीवन के तत्व और काव्य सिद्धान्त (लक्ष्मी नारायण सुधांशु), प्रसाद-पंत-मैथिलीशरण, आधुनिक काव्य की भूमिका और परम्परा (रामखेलावन राय), चिन्तन के धागे, संस्कृत साहित्य का इतिहास (डॉ. वचनदेव कुमार), सुकवि समीक्षा, हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन (प्रो. आनन्द नारायण शर्मा), मूल्य और मीमांसा, नई कविता, नई आलोचना और कला, सौन्दर्य शास्त्र के तत्व, छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन, कला विवेचन (डॉ. कुमार विमल), अंगिका लिपि की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (हरिशंकर श्रीवास्तव शलभ), रीतिकालीन कवि और काव्य, अनुसंधान और स्थापनाएँ (डॉ. श्यामानन्द प्रसाद), अलंकार संदीपनी (रामरघुवीर सिंह), आचार्य आनन्दवर्द्धन और उनका ध्वन्यालोक (डॉ. मोहनानन्द मिश्र), संताली भाषा और साहित्य : उद्‌भव और विकास (डॉ. डोमन साहु 'समीर'), अध्ययन विश्लेषण, उपन्यासकार प्रेमचन्द, नई कविता का स्वरूप विकास, बच्चन का परवर्ती काव्य, साहित्य के नये रूप (डॉ. श्याम सुन्दर घोष), मेघदूत : एक अनुचिन्तन, प्राकृत संस्कृत का समानान्तर अध्ययन (डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव), 'श्रतुरंग' : अंतरंग और बहिरंग (डॉ. सुरेन्द्र परिमल), हिन्दी काव्य में अप्रस्तुत विधान, कविता आज तक (डॉ. बहादुर मिश्र), अंगिका भाषा का इतिहास (डॉ. तेजनारायण कुशवाहा) प्रमुख हैं।

काव्य, कथा, आलोचना की इस समृद्ध परम्परा को देखते हुए भागलपुर के नाट्य साहित्य की स्थिति तुलनात्मक स्तर पर दीन रही है। नाटक का यहाँ ठीक-ठीक विकास तो राधाकृष्ण सहाय के भागलपुर आगमन के बाद ही हो सका। वैसे इसके पूर्व भी कृपानाथ मिश्र ने समस्या नाटक 'मणि गोस्वामी' लिखकर हिन्दी नाटक का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। बाद के दिनों में चंगेज खां, मीरा बाई (हरिकुंज) भर्तृहरि, मन वृन्दावन, उर्वशी जैसे श्रेष्ठ नाटकों का सृजन कर लखनलाल 'लखन' ने इस अंचल के रंगमंच को और भी लोकप्रिय बनाया। राधाकृष्ण सहाय कृत 'अतःकिम्', खेल जारी, खेल जारी', और 'रामराज्य' (युगल शास्त्री प्रेम) भागलपुर में नाट्य साहित्य के वयस्क विकास

को रेखांकित करते हैं। नाट्य साहित्य में श्रृंगार, सिंहासन (चन्द्रकिशोर जायसवाल), इन्तकाम, बन्द दरबाजा, बगावत कर दो, चम्मलधारी का लूटेरा, लोहा सिंह (पी. एन. जायसवाल) अराजकता का तांडव, सात रंग (जनार्दन यादव) के नाम भी लोकप्रिय हैं। दरअस्ल भागलपुर की नाट्य परम्परा लोकनाटकों की परम्परा है, और इसकी भव्यता, समृद्धि इसीमें समाहित है।

न केवल आरम्भ में विक्रमशील विश्वविद्यालय के सिद्ध कवियों को वह साहित्यिक प्रतिष्ठा न मिली, बल्कि कालान्तर में भी जब विराट व्यक्तित्व के आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा से यही भूल हुई, तो असन्तोष स्वाभाविक है। संतालपरगना का राजमहल, जो काव्यमीमांसाकर राजशेखर के अनुसार अंग महाजनपद का द्वार है, यहीं के थे भारतेन्दु युग के रससिद्ध कवि गोविन्द चंद। डॉ. पंकज साहा के लेख 'विस्मृत कवि गोविन्द चंद और राजमहल की समृद्ध साहित्यिक धरोहर' के अनुसार श्री उमाशंकर ने अपनी पुस्तक 'महेश नारायणः व्यक्तित्व और कृतित्व' में लिखा है कि न केवल खड़ी बोली के आदि कवि महेश नारायण को साहित्य के इतिहास लेखकों ने अनदेखा किया, बल्कि इस तथ्य का भी, कि भारतेन्दु का जन्म राजमहल में ही हुआ था, और उनका बचपन राजमहल की गलियों में ही बीता।

पूर्व में मैंने जब इस रहस्य से पर्दा उठाने की कोशिश की थी, तब बड़ा बवाल उठ खड़ा हुआ था। वाराणसी विश्वविद्यालय प्रकाशन की पत्रिका 'भारतीय वाङ्मय' में एक डॉक्टर से कई अंकों में स्पष्टीकरण लिखवाया गया, जो लगभग वही था, जिसका उल्लेख वार्ष्णेय ने अपनी पुस्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र में किया है। डॉ. साहब का कहना था कि मोहवश भारतेन्दु को अंगप्रदेश के राजमहल से जोड़ा गया है। लेकिन यह सब कह कर, इतिहास के उस सूर्य पर धूल फेंक धूमिल नहीं किया जा सकात, जो राजमहल की गलियों में दीप्त है। अगर इतिहास के इस सत्य को भूल सुधार के साथ हिन्दी स्वीकार करे तो भागलपुर में हिन्दी नाटकों की समृद्ध परम्परा स्वयं सिद्ध हो जायेगी। यह तो सत्य ही है कि काशीवास के बाद भी भारतेन्दु का भागलपुर (राजमहल-देवघर) आना-जाना रुका नहीं था। मुख्यालय भागलपुर में भारतेन्दु नाटकों का श्रृखलाबद्ध मंचन क्या किसी ऐतिहासिक तथ्य की ओर संकेत नहीं करता?

निस्संदेह हिन्दी साहित्य के संवर्द्धन में भागलपुर की पत्र-पत्रिकाओं की एक बड़ी भूमिका रही है। संभव है कई महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं के संबंध में अब कुछ पता भी नहीं चले। कुछ पत्रिकाएं और पत्र, जो काफी लोकप्रिय रहे, उनमें एक ओर जहाँ पश्चिमी भागलपुर से ई. सत्तर के बाद प्रकाशित होनेवाले अन्तराल (नचिकेता), परासेवा (पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु), त्रैमासिक विचार (श्यामदेव भगत), अरुणोदय (भगवान दास), सर्वोदय संदेश (अवधभूषण मिश्र), मशाल (हरगौरी शरण), खेल राही (बाल्मीकि प्रसाद यादव), शब्द कारखाना, वैश्य दर्पण (रमेश नीलकमल), तर्जनी (छन्दराज/अनिरूद्ध सिन्हा), गजल (ज्ञानेन्द्र), संभवा, (ध्रुव नारायण गुप्त), शिल्प विधान (राजेश), डगर (विभूति आनन्द/शहंशाह आलम), श्रृंगी भूमि (राजेन्द्र राज), कस्तूरी (प्रवीण), नया जमाना (जयदेव प्रसाद सरस्वती), जमालपुर टाइम्स (सकलदेव पुष्प), लोकप्रिय संवाद (कैलाशपति यादव) हैं, जिन्होंने हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाई हैं, तो वहीं अंगुत्तराप से प्रकाशित-बरौनी संदेश (हरिशंकर सहाय), समय सुरभि (नरेन्द्र सिंह/शिवनन्दन), मुक्त कथन (जनार्दन सिंह), कौशिकी (कैलाश झा किंकर), उत्तरांगी (चन्द्रप्रकाश जगप्रिय) है। शैली (कमला प्रसाद बेखबर), परती पलार (नमिता सिंह) का साहित्यिक अवदान अमूल्य है। यह दुर्भाय ही है कि इन पत्र-पत्रिकाओं का क्रमिक और विस्तृत इतिहास नहीं मिल पाया है।

जहाँ तक मुख्यालय भागलपुर की बात है, संभव है कि 1930 में भागलपुर सुल्तानगंज से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'गंगा' के वेदांक, विज्ञानांक और पुरातत्वांक के अंकों का उल्लेख तो है, क्योंकि पत्रिका के सम्पादन से शिवपूजन सहाय और राहुल सांकृत्यायन जैसे साहित्य मनीषी जुड़े हुए थे, लेकिन इसके साथ, गंगा से भी पूर्व जीवानन्द शर्मा के संपादन में प्रकाशित होने वाली श्री कमला (ई. 1913) का उल्लेख नहीं के बराबर है, जो उस समय की सरस्वती पत्रिका के समकक्ष की समझी जाती है ? और जब 'गंगा' का ही 'हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास' में सूचना भर प्राप्त है, तब बाद की, विशेष कर 1960 के बाद प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं, जिन्में, बीसबी सदी (तारकेश्वर प्रसाद), शांति (अशर्फी मिश्र), कौमुदी, हस्तलिखित पत्रिका (रामेश्वर झा द्विजेन्द्र), प्राच्य भारती, अद्वैत संवाद (आनन्द शंकर माधवन), शताब्दी संवाद (डॉ. बेचन), चन्द्रकिरण (सदानन्द सिंह/मिलन), इन्दीवर (बेचन/रघुनाथ घोष), सत्यावर्त्त (श्रीकेशव/अमरेन्द्र), सप्तम स्वर (राधाकृष्ण सहाय), आलोक (केदार राम गुप्त/डॉ. तपेश्वर नाथ), शिल्पी (देवेन्द्र), सही-सही (गंगेश/यादवेन्द्र/ठाकुर), कैक्टस (राही शंकर), मयंक (श्रीचंद/वेदप्रकाश वाजपेयी), कविता (सुधाकर/राही) नुक्कड़ नाटक (राजेश कुमार), परिणीता (पी. एन. जायसवाल), नवलेखन (दिवाकर विद्रोही), वनफूल (शिव कुमार शिव), युवा-संकेत (अर्जुन साह), लताड़ (रामावतार राही), उडलू (कुमार भागलपुरी), शिरीष कथा (सदाशिव सुगन्ध/अमरेन्द्र), बयान, पहचान (अनिल शंकर झा), पल्लव (डॉ. देशभक्त), समय (प्राण मोहन प्राण/अनुप), तुलसी (विजय कुमार), आज की कविताएँ (गिरिजा शंकर मोदी), गुलमोहर (जय प्रकाश गुप्त), अंगदीप (पारस कुंज), उद्घोष (अश्विनी), अन्ततः (राघवेन्द्र), अभिव्यक्ति (शिवकुमार शिव), हायकू (सुरेन्द्र प्रसाद यादव), किस्सा (प्र. सम्पादक : शिव कुमार शिव) संभाव्य (डॉ. शीतल अवस्थी) समकालीन करंट (दिलीप शर्मा) का विस्तृत उल्लेख कहाँ मिले, जो पत्रिकाएं हिन्दी के विकास में अपनी-अपनी महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभा कर

इतिहास बन गई हैं। और अब जिनके बारे में ठीक-ठीक से मालूम भी नहीं कि ये पत्रिकाएँ कब निकली थीं, इसके कितने अंक निकले? अगर समय (अनिरूद्ध प्रसाद विमल), नया हस्तक्षेत्र (आभा पूर्वे), वैखरी (अमरेन्द्र) और धूप के पत्ते (रार्मोशिर/ओमसुधा) को छोड़ दें, तो सारी पत्रिकाएँ पतझड़ के पत्ते बन चुकी हैं। ये ही नहीं, उस समय की निकलने वाली एक पत्रक पत्रिकाएं अणुकथा (अमरेन्द्र), रक्तबीज (दिवाकर विद्रोही), मनोज (प्राण मोहन प्राण), कथा (पारस कुंज), फिर से (अश्विनी), परिवर्तन (खुशी लाल मंजर) भी अब इतिहास के पन्ने में सिमट गए हैं। ऐसा नहीं कि समय-समय पर यहाँ के साहित्य को गति देने के लिए, संधान, लोकसमाचार (तारकेश्वर प्रसाद), बिहार टाइम्स (अंजनी कुमार विशाल), बिहार जीवन (रामदयाल पाण्डेय), डिफेक्टिव (मतवाला), अंग टाइम्स (रियाजत अली हैदर), अग्नि वीणा (बंकित चन्द बनर्जी), नया सेबरा (लेखन अकेला), लोकमत (शादरा शैदपुरी), जन प्रहरी (अशर्फी मंडल), प्रिय प्रभात (जनार्दन सिंह), आफत (मोहन मिलन), प्रियलोक समाचार (इन्दुभूषण नेहरू), शनिवार संदेश (श्रवण कुमार शर्मा), अजगैवी (अमिताभ वात्सायन), अंग मेल (पारसकुंज), अनावरण (सामबे), अंदेशा (डॉ. अरशद रजा), अंगसत्ता (दिलीप शर्मा) जैसे साप्ताहिक, पाक्षिक-समाचार पत्रों ने भारी मदद दी, बल्कि भागलपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, द्विजेन्द्र गोष्ठी, सर्जना, द्विजेन्द्र राष्ट्रभाषा परिषद् बौंसी, समय साहित्य सम्मेलन पुनसिया, कामायनी भागलपुर ने भी हिन्दी साहित्य के प्रचार में अपनी अहम भूमिका निभाई हैं। और इससे भी कहीं अधिक देवघर हिन्दी विद्यापीठ और इसी से प्रकाशित 'विद्यापीठ पत्रका' ने। जैसे कि अपने समय के कई सारस्वत साहित्यकार, जिन्में उमाकांत वर्मा, कमला प्रसाद उपाध्याय 'विनोद', सुरेश सिंह सुमन, कृष्ण किंकर सिंह। और अगर 1930 के आसपास से लेकर भागलपुर में आज तक की साहित्य यात्रा पर एक उड़ती निगाह ही डालें, तो आश्चर्य से आँखें खुली रह जाए। वर्त्तमान में कई महत्वपूर्ण पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ है। जिनमें किस्सा कारवाँ, संभाव्य प्रमुख हैं।

भागलपुर का हिन्दी साहित्य यहीं पर शेष हो जाता है, यह समझना भारी भूल होगी। रघुनाथ घोष, डॉ. बहादुर मिश्र, डॉ. मधुसूदन झा, डॉ. प्रेम प्रभाकर, विनोदबाला सिंह, केदारराम गुप्त, त्रिभुवन प्रसाद सिंह, डॉ. राजेन्द्र पंजियार, महेन्द्र जायसवाल, मंजू सिंह, राजेश कुमार, शैलेष, अनिल किशोर सहाय, डॉ. निशा राय, राधेलाल नवचक्र, दिनेश तपन, दयानन्द जायसवाल, छाया पाण्डेय, मनोज कुमार पाण्डेय, उलूपी झा, अंजनी कुमार शर्मा, बटेश्वर साह 'बटुक' और जमुई के प्रमुख अन्य कवियों में किशोरी चतुर्वेदी ब्रजवल्लभ चतुर्वेदी, श्री किरण, प्रभात सरसिज, तथा भागलपुर के ही राम शर्मा 'अनल', महेश प्रसाद सिंह 'आनन्द', सत्यानन्द, विकास सिंह गुल्टी, सोहन प्रसाद चौबे, नागेश मिश्र, राजकुमार, डॉ. श्याम लाल आनंद, जयनारायण बेचारा, मधुलक्ष्मी, महेन्द्र, जयंत जलद, विष्णु मंडल विकल, स्नेहिल, धीरज पंडित, पतझड़ खैराबादी, संयुक्ता गुप्ता, प्रिया जैसे सक्रिय साहित्यकार के बिखरे साहित्य को बिना समेटे भागलपुर के आधुनिक साहित्य पर चर्चा करना फिजूल होगा, और जिनके साहित्य, व्यापक सोच और शोध के अभाव में अभी तक किसी महत्वपूर्ण पुस्तक में स्थान नहीं पा सके हैं, जबकि इन नामों में नई पीढ़ी के नये साहित्यकारों के नाम असूचित हैं।

संभाव्य-संदेश

एक डुबकी में रत्न नहीं मिलने पर यह नहीं समझना चाहिए कि रत्नाकार में रत्न नहीं है। धैर्य के साथ साधन करते रहें, समय आने पर साधना का फल अवश्य मिलेगा।

डॉ. गौरीशंकर मिश्र ''द्विजेन्द्र'' की कवितायें

(3 नवंबर 1913 को आपका जन्म बौंसी (बाँका, बिहार) के भंडारीचक गाँव में हुआ था। तीन विषयों - हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी में एम.ए.। स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग भागलपुर विश्वविद्यालय के रीडर पद से सेवानिवृत्त। 9 सितंबर 1982 को देहावसान। प्रस्तुत है इनकी दो अप्रकाशित कवितायें।)

उल्लास

उर-उर में स्वर्गिक नवोल्लास,
कण-कण में चेतनता-प्रवाह,
दिशि-दिशि में मधुमय नव प्रकाश!

पाताल-धूम-सा घनीभूत
ये विकट-भवद जलधर अपार,
मथ रहा जगत को चण्ड वात,
चू-चू पड़ने को धनासार।
यह नभ-व्यापी घन अंधकार,
डूबे जिसमें सब दिशा-काल,
तम निगल गया सहसा प्रचण्ड
दिनकर को अजगर-सा विशाल!

कैसे फैला फिर ज्योति-पिण्ड
तेजः स्वरूप रवि का प्रकाश?
उर-उर में मोहक नवोल्लास!
दुर्दिन की कज्जल-स्नात रात,
जिसमें विलुप्त तारक अशेष,
होकर पुनरागम से हताश
मज्जित तम-सागर में शेष!
फैला जगती के आर-पार
चिर-सधन कालिमा का वितान,
जिसमें विद्युत की दीप्ति रूद्ध,
श्रुति-सुखद जलद का मन्द्र ध्वान।

कैसे यह विद्युच्छवि अशान्त?
कैसे यह विधु का मधु प्रकाश?
उर-उर में शीतल नवोल्लसा!

यह वर्षा का दुर्दान्त काल,
यह मधु प्रकाश शाश्वत अखण्ड।
शशि-किरणों से यह मृदुल, कान्त,
यह सूर्यातप से खर, प्रचण्ड।
विद्युत का चिर चांचल्य त्याग,
ले उसका आकर्षक विभास,
तम चीर, जगत में भर उजास,
गृह-गृह में उतरा नव प्रकाश।

यह आत्मा की चिर अमर भूति,
यह अन्तर तल का मधु प्रकाश।

उर-उर में मादक नवोल्लास!

जीवन का लक्ष्य

क्या लक्ष्य है हमारा कोई जरा बता दे!
नाशवान जग के अमरत्व का पता दे!
सुख में प्रसन्न होते, दुःखाग्नि-बीच जलते,
मधु स्वप्न पाल उर में निज को सदैव छलते,
किस लक्ष्य-प्राप्ति में हम जाते किधर, कहाँ हैं?
जीवन-अनन्त-पथ पर फिर-फिर सँभल, फिसलते।
आकृष्ट हो विवश हम जिसकी तरफ पड़े चल,
उसकी अपूर्व झाँकी कोई कभी दिखा दे!
क्या लक्ष्य है हमारा कोई जरा बता दे।
मधुमास की वन-श्री दृग को सतत लुभाती,
छिप आम्र-पल्लवों में पंचम पिकी सुनाती।
शीतल सुगंध करता संतृप्त नासिका को,
पीयूष-तुल्य रस से रसना तृषित अघाती।
सुरभित समीर से है कंटकित गात होता,
रमणीय ये, इन्हीं में मन विश्व क्या रमा दे?
क्या लक्ष्य है हमारा कोई जरा बता दे!

वैचारिक लेख

प्राण साहब के बहाने

डॉ० शंकरमोहन झा
हिन्दी विद्यापीठ, देवघर, झारखण्ड

प्राण साहब को दादा साहब फाल्के पुरस्कार मिला। फाल्के सम्मान फिल्म जगत का अति प्रतिष्ठित सम्मान है। प्राण साहब की वैविध्यपूर्ण अभिनय-क्षमता के लिए दिया गया यह सम्मान कुछ विलम्ब से जरूर मिला परन्तु व्यक्तित्व का प्रभाव एवं सम्मान की गरिमा के लिहाज से यह बहुत उचित काम हुआ। प्राण साहब ने खलनायकी से फिल्मी जिन्दगी की शुरूआत की। बाद में तरह-तरह के चरित्र अभिनेताओं का सफल अभिनय किया। कहते हैं कि फिल्म हो या साहित्य, वह समाज को प्रतिबिम्बित करता हैं। समाज में सामान्य लोग, औसत दर्जे के लोग ज्यादा होते हैं। समाज, देश और विश्व को दिशा देने वाले लोग हर युग में विरल होते हैं। ऐसे विरल लोग जिन्दगी की चुनौतियों की पसंद करनेवाले होते हैं। जिस जीवन में, जिस क्षेत्र या किरदार में चुनौती नहीं हो उसे ये सिरे से ही खारिज कर देते हैं। संघर्ष की रोटी में पसीने का स्वाद मिला होता है। भूख के बाद भोजन, परिश्रम के बाद विश्राम कड़ी मेहनत के बाद की उपलब्धि ा ही सही हासिल होती है। घर-परिवार को चलाने में, बच्चों को तैयार करने में, सात पीढ़ियों के लिए धन-संचय करने में सारी ऊर्जा लगा देने के बाद चैन का एक क्षण आकाश-कुसुम हो जाता है।

एक जमाना था जब राष्ट्रीय व्यक्तित्व के बगैर किसी को ज्यादा तवज्जो नहीं मिलती थी। क्षेत्रीय व्यक्तित्व, पारिवारिक व्यक्तित्व, क्षेत्र विशेष और खास कुनबे में ही थोड़ी बहुत चर्चा पाकर संतुष्ट हो जाते थे। एक तरह से ये छोटे-छोटे पेड़, झाड़ियों की तरह होते थे जो बरगदी व्यक्तित्वों की खाद बन जाते थे और उसी में अपने जीवन की सार्थकता समझते थे। आज स्थिति उलटी है। मुहल्ले का दादा यह ख्वाहिश रखता हे कि गांधी उसके घर पानी भरें और नेहरू उसके पाँव दबाएँ। बरगद के पत्ते चबाने की चाहत से लाचार बकरियों की हुकूमत में देश आ गया है। आजादी के बाद प्रधानमंत्री की कद का आदमी गिनने से सैकड़ों की तादाद में पहुँचा जा सकता था। आज का वर्त्तमान इस दृष्टि से बड़ा दुखद है। एक बार एक हॉकी खिलाड़ी हारी हुई भारतीय टीम पर अपनी प्रतिक्रिया दे रहा था। लोग जीते हुए दल के खिलाड़ी होने में गौरव महसूस करते हैं। लेकिन, इस खिलाड़ी का दर्द कुछ और था। उसे राष्ट्रीय एकादश में स्थान नहीं मिला था। वह कह रहा था कि जब टीम को हारना ही था तो मैं भी यदि टीम का हिस्सा होता तो क्या हर्ज था? राजनीतिक दल मजबूत उम्मीदवारों की जगह अपनी पॉकेट के उम्मीदवारों को टिकट दिलवाना चाहते हैं। अर्थशास्त्र कहता है कि जिस चीज का अभाव हो उसकी कीमत ज्यादा होती है। हमलोग किस अर्थ प्रधान युग में घुसेड़ दिए गए हैं कि विरल होती जा रही ईमानदारी, दुर्लभ होती जा रही कर्त्तव्य-निष्ठा, लुप्तप्राय समर्पण-भावना को जूतों की नोक पर सरेआम सरेबाजार उछालकर सामूहिक ठहाकों की ठहकार में मसगूल हो जाते हैं?

प्राण साहब की एक बात मुझे बार-बार खींचती है। वे 93 वर्ष की भरी-पूरी उम्र में जब कहते हैं कि मुझे दूसरी जिन्दगी यदि जीने के लिए मिले तो मैं प्राण ही होना पसंद करूंगा। फिल्मी भाषा में कहें तो अगला जन्म भी वे इसी पटकथा पर जीना पसन्द करेंगे। यह एक बड़ी बात है। और आज के, आपाधापी वाले दौर में, दूसरों के हलक से निगला हुआ निवाला हाथ डालकर उगलवा लेने वाले युग में कोई व्यक्ति अपनी शर्त्तों पर जिन्दगी जी पाया, यह बड़ी बात है। आज के अधिकांश यशः प्रार्थी आवेदकों को छाती पर हाथ रखवा कए शपथ-पत्र भरवाइए या लाई-डिटेक्टर पर खड़ा कीजिए तो वे यह नहीं कह पाएंगे कि उन्होंने अपनी शर्त्तों पर जिन्दगी जी या उन्हें अपनी जिन्दगी से संतोष है या यही किरदार वे अगले जन्म के लिए भी चुनेंगे। कहते हैं फांसी पर जाते अश्फाक जब रो पड़े तो उनके साथी अचंभित हो गए थे। उन्हें आजादी के अप्रतिम दीवाने के जज्बात पर इंच भर शुब्हा नहीं था। अश्फाक ने खुलासा किया कि उसके मजहब में पुनर्जन्म का दर्शन नहीं है - इसलिए वह रो रहा है। वह देश के आजाद कराने के लिए खुदीराम बोस की तरह बार-बार भारत माता की गोद में जन्म लेना चाहता है और अपनी जिन्दगी कुर्बान करना चाहता है। यही बस जज्बा है जिसे रामावतार त्यागी यों कहता है -

तन समर्पित, मन समर्पित और यह जीवन समर्पित।
चाहता हूँ, देश की धरती तुझे कुछ और भी दूँ ।।

तन,मन,धन के समर्पण की बात हमेशा तोते की तरह दुहराई जाती है। जिन्दगी के समर्पण के बाद भी कुछ बचता है क्या? हाँ, बचता है। वह क्या है जो वाकी रह जाता है? इसी बकाये की खोज की प्रक्रिया की संतुष्टि का नाम जीवन है। वही जीवन यश की कसौटी पर खरा उतरता है और युग-युग को प्रेरित करता है।

कलियुग के अहंकार की विशाल छाती पर कभी कोई विराट व्यक्तित्व कैसे अवतरित हो गया, यह शोध का विषय है। गांधी, सुभाष, भगतसिंह, खुदीराम जैसे लोग सौ-डेढ़ सौ वर्ष पूर्व हो गए। विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ, निराला, प्रसाद, प्रेमचन्द, शरतचन्द्र की सुगंध 'भारत भू की धूल' में अभी तक वर्त्तमान है। 'जिन ढूँढ़ा' तिन पाइयाँ का समय चला गया है।

औरंगजेब के छक्के छुड़ानेवाला उसका प्रतिद्वन्द्वी अपने घोड़े की समाधि बनवाकर समर्पण को मिसाल कायम करने का युग अब गुजरा हुआ

अतीत है। अब कोई महाराणा प्रताप चेतक के मृत शरीर को अपने आँसुओं से अर्ध्य नहीं देगा। अब अपने सहकर्मियों, सहायकों की छाती पर चढ़कर युद्ध के मैदान में भी गांधारी की तरह फल तोड़ने की उत्कट आकांक्षा का समय है। बीज, खाद, सिंचाई, निराई, गुड़ाई सब महामहिम का अधिकार है। महामहिम जिधर से गुजरेंगे उधर से सबलोग होशियार हो जाएँ। महामहिम का रथ जिसे रौंदकर गुजर जाए वह स्वयं को गौरवान्वित करे और मुआवजे के लिए, बख्शीश के लिए कतारबद्ध होकर करबद्ध प्रार्थना करे। राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह हों, शिवपूजन सहाय हों, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र हों, मंटो हों या हंसकुमार तिवारी, ज्ञानेन्द्रपति, आलोकधन्वा, उत्तम पीयूष, अमरेन्द्र, सुमन सूरो या राम शंकर मिश्र 'पंकज', दुनिया की बेहतरी की चाहत में लगे इन और इन जैसे सैंकड़ों जाँबाजों की फौज दयाशंकर और विजय जैसे छोटे-बड़े किरदारों की छोटी-बड़ी पृष्ठभूमि में बंजर होती मनुष्यता के लिए आशा की बड़ी किरण हैं। ये मुट्ठी भर बीज देश-दुनिया को सब्जा करने का अकूत जज्बा रखते हैं। कल कोई अर्नेष्ट हेमिंग्वे अपनी शर्त्तों पर न जी पाने की लाचारी में आत्म-हत्या न करे, यह प्रयास होना चाहिए। इतिहास 'घास की रोटियों' का ही बनता है। कल का जयकारा अभी गर्भ में है। समय की खराद अभी सृजन में लीन है। भविष्य पुटपाक में है। नागार्जुन की तरह, बेहतर सपना देखनेवाले एक्टिविस्टों की टोली को प्रणाम किया जाना चाहिए। कंगूरे को न देख पानेवालों की जमात, नींव में शामिल हड्डियों, को आदर देने की बात हो, 'पुण्य वेदी' पर अपने हाथों में अपना मस्तक लेकर हाजिर होने वालों के लिए हमारे कर स्थायी रूप से प्रशस्ति की मुद्रा में आबद्ध हों।

बुद्ध ! कलियुग में तुम्हें फिर आना होगा

शशांक सौरभ

तुमने ऐश्वर्य को छोड़कर
वैराग अपनाया...
बुद्ध तुमको न जाने ऐसा क्या समाया...?
क्या देखा तुमने उन दृश्यों में
की तुम्हें सब कुछ व्यर्थ प्रतीत हुआ...
क्या पाया तुमने उस दिन
की तुम्हें सत्य की वो मणि मिल गयी
जिसकी तलाश में न जाने सैकड़ों पथिक भटक चुके थे...

तुमने काम, क्रोध, मोह, माया का त्याग कर
बंधनों को त्यागा...
कोमल शय्या को छोड़कर,
तुम भटके वन-कंदराओं में...
वैभव का त्याग कर,
तुमने पत्थरों को अपने मार्ग में अपनाया...
तुमने काटों को भी हंस के गले लगाया...
कई वर्षों साधन के पश्चात
तुमने निर्वाण पाया...
दिव्य ज्ञान अपनाया...

कठिन श्रम और साधना से तुमने पा ली
ज्ञान की वो निधि जिसको ढूँढते हुए कई अपने मार्ग भूल चुके थे...
कई भ्रम टूटे तुम्हारे,
मोह के व्यर्थता को जाना तुमने
और जाना जीवन का सत्य...
तुम सिद्धार्थ से बुद्ध बने
अनित्य, अन्तमन, निर्वाण
की शिक्षा जग में फैलाई तुमने...
बांटा अपना ज्ञान सर्वत्र दिशाओं में
बुद्ध तुमने कईयों को मार्ग दिखाया...
दिए उपदेश जिसे सुन बदले हृदय
और फैला प्रेम संसार में चारों ओर

आज जब मनुष्य भटक चूका है अपने पथ से...
डूबा है लालच की मदिरा में,
अपने आदर्शों को भूल
वो खो गया है इस जग की अंधेर गलियों में
तो सिर्फ तुम्हारा दिव्य प्रकाश ही उसे
अपने मार्ग पे प्रशस्त रहने की प्रेरणा देगा...
बुद्ध, कलयुग में तुम्हें फिर आना होगा,
तुम्हें फिर से मुनष्य को राह दिखाना होगा...

कहानी

शून्य... शून्य... शून्य...

पी. एन. जायसवाल
भागलपुर, बिहार

''रबना बहियार में जलेसर दादा का एक बिघिया खाली हो गया।'' बताती घटरू के सामने कटोरी रखती गुजरी बैठ गयी। वह मुँह-हाथ धोकर झोपड़ी के आगे, गोबर लीपे मिट्टी के चबूतरे पर, पूस की नरम धूप में बदन सेंक रहा था। पिछले दिनों उसकी तबीयत मंद थी इसलिये काम पर कहीं निकला नहीं। आराम करते-करते मांसपेशियों में ऐंठन हो गयी। देह दुखने लगी तब सरसों तेल के साथ किरासन तेल मिलाकर गुजरी ने उसकी खूब मालिश की। मालिश करवा कर कल दिन भर वह धूप में लेटा रहा। आज राहत महसूस हो रही थी उसे।

कटोरी में महुआ और चिकना से बना लट्टो देखते ही उसका जी अजीब सा कसियाने लगा। दो दिनों से लगातार यही खाते-खाते वह ऊब गया था। अभी भूख लगी थी, इसलिए जी का विरोध करते हुए उसने लट्टो का एक गोला उठाया और दाँतों से काटा। मुँह चलाते सामने के बड़का टोला की ओर नजर दौड़ायी। यहाँ से लगभग पचास खेत टपने के बाद था, बड़का टोला। उसी टोले से इस टोले की रोजी-रोटी का सारा जुगाड़ होता था। सड़क, बिजली, स्कूल, अस्पताल, बैंक और टेलिफोन जेसी सुविधाओं से सम्पन्न था बड़का टोला।

मुँह में लट्टो पीसते-निगलते ओकाई आने लगी तो उसने बचा जूठा टुकड़ा कटोरी में रख दिया और गुजरी को पानी के लिए इशारा किया। बगल से लोटा उठा कर गुजरी ने उसकी ओर बढ़ाया, और पूछा ''क्या हुआ?''

''अब लट्टो खाने से जी हुलियाता है।'' पानी पीकर घटरू ने बताया।

''मुनरी काकी की दुकान का सारा बकाया चुकता करने के बाद दू सौ गिराम चिकना और एक किलो महुआ ही लाये हैं। अब जो खाओगे ला दूंगी।

मुनरी काकी के नाम से ही उसे गुस्सा आता था। अभी उखड़ते-उखड़ते इसलिए थम गया कि जब भी खाने-पीने का टोटा होता, बिना किचकिच के वह उधार दे देती, और पैसे में देर-सबेर होने पर ज्यादा हील-हुज्जत नहीं करती। उधार खाते में जीना उसकी नियति थी, चुनांचे मुनरी काकी अपना फायदा उठाने से चूकती नहीं। उधार लेनेवाले को वह घटिया सामान देती थी और भाव भी ऊँचा रखती थी। जब उधार में ही जीना था तो गुजरी से क्या कहता। भुकड़ी से भरा महुआ लायी थी। मदैली दुर्गन्ध से भरा-भरा। सूप में एक-एक महुआ को चुनने के बाद, धो-सुखा कर कड़ाही में देर तक उलाया। चिकना को भूंजा। फिर दोनों को एक साथ ऊख में कूटा। महुआ-चिकना जब चूर होके लठियाने लगा तब मुट्ठी से गोलिया-गोलिया के लड्डू आकार में लट्टो बनायी थी। तीन शाम से यही लट्टो उसकी भूख बांधे था।

''तुमको कैसे पता चला कि जलेसर दादा का ऊ खेत खाली हो गया?'' उसाँस छोड़कर बात का रुख मोड़ते उसने पूछा।

'दिशा-मैदान के लिए भोर में निकली तो गोबर चुनने रबना की ओर बढ़ गयी थी। हमारे काम का है ऊ खेत। एक-एक बित्ते धान-डंठल की खुत्थी भी है उसमें।''

घटरू ने लंबी डकार छोड़ी। दुर्गन्धयुकत वायु से हलका तो हुआ पर मन भिनभिना गया। कंधे से गमछा उतार कर जमीन झाड़ते हुए उसने कहा ''अभी हम घोलटेंगे।''

उसने गमछा बिछाया। बायें हाथ की बाँह माथे के नीचे रख कर करवट लेट गया और दायें हाथ की बाँह से चेहरा ढँक कर आँखें बंद कर लीं।

गुजरी को गुस्सा आया, पर कुछ कहना मुनासिब नहीं लगा। कटोरी पर लोटा रखकर अंदर ही अंदर फनफनायी और झोपड़ी के मुँह पर जा कर पसर गयी।

वह सोकर उठी तो दोपहरी उत्कर्ष बिंदु पर थी। अंगड़ाई से बदन ढील करके कटोरी से घटरू का जूठा लट्टो उठाती दीवार से उठंग गयी और लट्टो खाती-चभलाती घटरू को देखने लगी। दो साल पहले उसका ब्याह हुआ था घटरू से। वह कृष्णाकाय,कठमसत पुरुष था। उसकी कठोर बाँहों-हथेलियों में लौह शक्ति थी। दिन भर कुदाल चला लेने की क्षमता थी उसमें। इधर तबीयत मंद रहने से कमजोर हो गया था। भरपेट भाजन नहीं मिलने से शरीर कमजोर होता गया। आज भी तो कुदाल चलानी थी उसे। एक-दो गाल लट्टो की मुराद ही कितनी। चखने जेसा। भूखे पेट ही सो गया था। अन्य मजदूरों की तरह उसे भी भूखे सो जाने की विशेष क्षमता थी।

अभी वह गहरी नींद में जोर-जोर से खर्राटे ले रहा था।

एकाएक गुजरी उठी और पड़ोस की झोपड़ी जा पहुँची। खाने के लिए कुछ पैंचा मांगने आयी थी वह। इस झोपड़ी में कुछ नहीं मिला तो अगली झोपड़ी में पहुँची। यहाँ भी अभाव था। तीसरी झोपड़ी से एक पैला मूढ़ी आज ही लौटा देने के करार पर लेकर लौटी।

चबूतरे पर पहुँची तो घटरू हाथ मुँह धोये बैठा था। उसके गमछे में आँचल से मूढ़ी पलटती बोली ''अब चलो।''

लोटा उठाकर गुजरी झोपड़ी में घुसती-घुसती थमकी। मुस्कुराई और पूछा ''लट्टो खाआगे?''

झुंझलाकर घटरू ने आँखें कड़ी कीं।

ठसक से भर गयी वह। हँसी और झोपड़ी में घुस गयी। उसकी हँसी में ठिठोलियापन था, जिसकी अनुगूँज घटरू के कानों में देर तक सुनाई पड़ती रही।

इसी बीच वह झोपड़ी से निकली। केहुनी से काँख तक बाँह से डलिया दबाये थी वह। डलिया में एक बोरा था। एक कचिया थी। दूसरे हाथ में एक

कमाची जैसी लाठी भी। मुँह में लट्टो चबा रही थी। उसे तैयार देख मूढ़ी फाँकते घटरू ने झोपड़ी का टट्टर सटाया और उस छोटे चबूतरे के सीमांत पर पड़ी कुदाल उठा ली।

जलेसर के खेत तक पहुँचते-पहुँचते आधे घंटे का वक्त लग गया। घटरू मेड़ पर बैठ गया और गुजरी कई कदम चलकर निर्दिष्ट स्थान पर पहुँची। जिस वास्ते आयी थी, उसे सुरक्षित पाकर खुश हो गयी वह। मुसौनी मिट्टी पर डलिया रखकर घटरू को पास आने का इशारा किया।

मुसौनी मिट्टी देखकर घटरू ने बिल के भीतर की लंबाई-गहराई का अनुमान किया और लुँगी जांघों तक समेटते हुए बहियार की तरफ देखने लगा। कुछ मजदूर-मजदूरिन खेतों से बोझा उठाकर दुलकी चाल से बड़का टोला की ओर जा रहे थे। दो-तीन खेतों बाद, कुछ मजदूर धान का अटिया समेट कर बोझा बाँध रहे थे। वे कभी-कभी इन दोनों को भी देख लेते थे। उसने गुजरी को बताया।

कचिया की नोंक से अपनी पीठ खुजाती, उधर देखती बिंदास भाव में बोली ''धुर, ऊ लोग के देखने से का होगा। ई खेत जलेसर दादा का है। ऊ खेत झानो बाबू का है। अपना काम देखो।''

घटरू ने कुदाल उठायी और बिल कोड़ना शुरू किया। गुजरी अपनी साड़ी ठेहुने तक समेट कर सतर्क भाव से लाठी के साथ खड़ी थी। ऐसे बिलों में मूसे की लालच लिए साँप घुसे रहते हैं और कभी-कभी बिल कोड़ने वाले को काटने की कोशिश करते हैं। गुजरी का फुफेरा भाई ऐसे ही हादसे का शिकार हो गया था। फोंफाता गेंहुअन बिल से निकला और काट लिया। मुसहरों ने झाड़-फूंक के भरोसे उसकी जान गँवा दी थी। पढ़े-लिखे लोग सोचते रह गये थे कि इस नाचती हुई सदी की सभ्यता के बिल्कुल समीप रहने वाली मुसहर जाति आज भी अशिक्षा और गरीबी के कारण अंधविश्वास में जीने के लिए कितने विवश है।

लगभग दो हाथ बिल कोड़ने के बाद तिलस्म दिखा। साठ डिग्री का कोण बनाते बिल के मुँह दो तरफ खुल गये थे। बाँयीं तरफ वाला मुँह अपेक्षाकृत छोटा था। एक कुदाल मिट्टी उस बिल के मुँह पर डाल कर किसी भी संभावी को रोक दिया और दाँयी तरफ वाला बिल कोड़ने लगा। घटरू को यह जानकारी थी कि बड़े मुँह वाले बिल में ही मूसा खेत में गिरे धान की बालियां काट-काट कर इकट्ठा करता है और बैठकर अपनी अंतहीन क्षुधा शांत करता रहता है।

''मूसा...ऽ ऽ...'' बिल से निकल कर मूसा भागा तो घटरू चिहुँका। जान बचाने के लिए भागता मूसा मेड़ के पास पहुँच कर, उसके आधार से सटे-सटे भागता रहा। मूसा के पीछे दौड़ती गुजरी ने निशाना बांध कर लाठी फेंकी। मूसा लाठी की जद आ गया। वह दौड़ती हुई वहाँ तक पहुँची और चितांग, काँपते मरने के लिए, हुकहुकाते मूसे को, पूँछ पकड़ उठा लिया। अपनी लाठी उठाकर चपलता से घटरू के पास पहुँची। कहा ''देखो, कितना मोटा-मस्त है।'

दोनों की आँखों में खुशियाँ चमक रही थीं। उन्हें मूसे का मांस बेहद पसंद था। मुसहरों के खान-पान में मूसे का मांस अत्यन्त ही प्रिय होता है। संभवतः इसी कारण से उसकी जाति को लोगों ने मुसहर कहा।

अभी वे खुशियों को बटोर ही रहे थे कि दूसरा मूसा उसी बिल से निकला और भागा। मरे मूसे को डलिया में फेंक कर लाठी से निशाना बनाती गुजरी मूसे के पीछे दौड़ी। घटरू ने मूसे पर कुदाल फेंकी। तबतक मूसा एक अन्य बिल में घुस गया था।

पलांत में दोनों ने तय किया कि बिल कोड़ा जाय। घटरू ने बिल कोड़ना शुरू किया। उसी बीच गुजरी को डर हुआ कि मरे मूसे को कहीं कौआ लेकर उड़ न जाय तब वह मूसे को डलिया के नीचे ढँक आयी। अब लाठी लिये सतर्कता से खड़ी थी। यह बिल छोटा था। कोड़-खान कर दोनों ने उस मूसे का भी शिकार कर लिया और वापस पहले वाले बिल के पास लौटे।

दो मूसों का शिकार करके वे काफी खुश थे, उनके भीतर की ऊर्जा बढ़ गयी थी। घटरू बिल कोड़ने लगा। गुजरी निश्चिन्त हो धान डंठल की खुत्थी काटने लगी, क्योंकि वह जानती थी जिस बिल से जीवित मूसे निकले हों उसमें साँप नहीं होते हैं।

बिल की गहराई में लंबी-चौड़ी जगह थी। इस मुसनी कोठी में धान की ढेरों बालियाँ थीं। सारी बालियाँ निकाल लिया। बायीं तरफ वाले बिल से भी थोड़ी बालियाँ मिलीं। कोड़ी गयी जमीन में घटरू ने मिट्टी भर दी। जलावन के लिए एक डलिया खुत्थी भी काट ली थी गुजरी ने।

शीतला थान तक आते-आते घटरू ने थकान महसूस की। गुजरी को बताया और थान से थोड़ा हटकर वे बैठ गये। गुजरी ने थान हुलक कर देखने की हिम्मत की तो घटरू ने डांटा। ऐसा करते बड़का टोला का कोई लड़का भी देख लेता तो आफत आ जाती। टेढ़े बकुचे परास पेड़ों से घिरे शीतला थान को दूर से ही देखती रही वह। वहीं से शीतल माई को हाथ जोड़ा और लंबी साँस खींच कर उसने अपनी मुसहरी को देखा। टूटी झोपड़ी। गंदगी ही गंदगी। कोई सड़क नहीं थी टोले तक जाने के लिए। बरसात में पानी से घिर जाता है। तब ठेहुना अथवा जाँघ तक पानी पार कर ही जाना पड़ता है टोला तक। बाहर से टापू जैसा दिखता है। जमीन कीचड़ से बजबज हो जाती है। रात अपने जबड़े में टोले को ऐसे लील लेती है कि बाहर से कहीं कोई थाह, अता पता नहीं चलता है। मुसहरी का कोई बच्चा स्कूल जाकर बैठता नहीं था। उसने सुना था, कागज में बिजली उसके टोले में जल रही है। टोले में लाल कार्ड बँटे थे, पर अनाज कभी मिला नहीं। किसी बूढ़े को वृद्धा पेंशन मिला ही नहीं। इंदिरा आवास से मकान बना कर मिलने की बात लंबे अरसे से वह सुनती आ रही थी। हर ओर से रिक्त। रिक्तता में रचा-बसा। घटरू ने उसे बताया था ''इसी मुसहर टोले की तरह होता है हर मुसहर का टोला।''

''चलो।'' कमर सीधी करके बोझ उठाते घटरू खड़ा हो गया।

निःश्वास छोड़ती, अपना बोझ उठाकर वह भी घटरू के साथ-साथ चलती रही मुसहरी की ओर।

झोपड़ी तक पहुँचते-पहुँचते सूरज एकदम झुक गया था। आकाश की पश्चिमी ढलान पर सुरमई साँझ पसरती जा रही थी। रंग की आभा से नहाया

मुसहर टोला डरा-डरा चेष्टाशून्य दिख रहा था। घटरू के चबूतरे पर मिट्टी-धूल से लिपटे, कमर से ससरता फटा पैंट ऊपर खींचते, नंगे बदन के कई बच्चे बेपरवाह होकर शोर मचा रहे थे।

इन बच्चों के लिए कहीं से भी सहानुभूति अथवा संवेदना का एक कतरा शेष नहीं था। सामाजिक विकृतियों की एक मुकम्मल किताब होती है मुसहरी।

''तुम थक गये हो। घर ही रहो। हम मुनरी काकी की दुकान से खरची ले के आते हैं। तुम मुसबा को आगिन में पका के भरता बना कर रखना।''

''नहीं, मसाला देके झोल बनाओ।''

''...तो मुसबा को झरका कर कुटिया लेना।'' कहती गुजरी झोपड़ी के भीतर घुसी और तुरंत वापस लौटी।

''भात खायेंगे।'' घटरू ने कहा।

उसने सहमति में सिर हिलाया। झोला दाँतों से पकड़कर, हाथों से अपना लंबा, उलझा, बेबरदास्त केशपाश समेटती, खोपा बाँधती, वह चबूतरे से उतरी और बड़का टोला का रुख किया।

''तूँ घटरू की मौगी है न ?''

मुनरी काकी की दुकान से खरची का सामान झोले में लेकर निकलते ही एक अधेड़ मुछियल आदमी ने उसका रास्ता रोका।

''हाँ।'' सिर का पल्लू सहेजती वह बोली।

''अभी हम घटरू को बुलाने मुसहरी ही जा रहे थे। जलेसर मालिक की बुलाहट है। अब तुम से भेंट हो गयी है तो तूँ ही चल। मालिक क्या कहते हैं सुन ले।''

गुजरी के कलेजे की धड़कन बढ़ गयी। वह समझ गयी कि खेत के बिल कोड़ने की बात जलेसर दादा के कान तक पहुँच चुकी है। हलांकि ऐसी बातें मुसहरों के लिए कोई मायने नहीं रखती, पर अब जलेसर दादा के कान तक पहुँची है तो नौबत मारपीट तक भी पहुँच सकती है। मुसहर मर्द को बड़का टोला का कोई छोटा-मोटा छोकड़ा भी रे-बे कर देता था, और जलेसर दादा तो सब पर भारी थे। वे मुसहर की बहू-बेटियों तक को भी गंदी-गंदी गालियां देने से नहीं चूकते। वह हिचकिचाती हुई बोली ''कल बिहान पहर उसी को भेज देंगे।''

''बतकटरी करेगी? अभी चलने कहा है तो अभी चल।''

हुकुर-पुकर मन लिये वह अधेड़ आदमी के साथ हो गयी और ईंट की घेराबंदी में कैद एक मकान के बरामदे के नीचे आ कर खड़ी हो गयी। वोट देनेवाला फोटो खिंचवाने के समय, मुसहरी के लोगों के साथ इस घेराबंदी के भीतर एक बार आयी थी वह। हलांकि वह फोटो स्कूल में खिंचवाना था, पर पता नहीं क्या हुआ कि चमार टोला और मुसहरीवालों का फोटो यहीं खींचा गया था। घटरू ने उसे बताया था ''चमार टोला और मुसहरी का कार्ड जलेसर दादा के पास रहता है।''

घेराबंदी के भीतर कई जगह बिजली के बल्ब लटके थे, पर उनमें रोशनी नहीं थी। बरामदे की छत की एक गोल कड़ी से बँधी रस्सी के सहारे जली लालटेन झूल रही थी। चौकी पर कंबल ओढ़े जलेसर बैठा था।

''मुनरिया की दुकान से निकलती घटरूवा की मौगी धरा गयी। उसी को बुला लाये हैं मालिक।'' अधेड़ आदमी ने जलेसर से कहा और चला गया।

''तू घटरूवा मुसहर की औरत है?'' जलेसर ने पूछा।

''हाँ।'' पल्लू आगे तक खींचकर, हाथ जोड़ती, सिर नवाती वह आहिस्ते से बोली।

''नीचे काहे खड़ी है, ऊपर बरंडा पर आ जा।''

''छुतही हैं दादा।'' वह दबी-दबी जबान से बोली थी।

''ऊ तो हम्मू जानते हैं। पर जरा लालटेन की रोशनी में तो आ।''

वह सकसकायी। डरती-डरती, माथे पर का आँचल थोड़ा और आगे खींचती बरामदे पर चढ़ गयी।

सत्तर के फेंटे का पोपला-पिलपिला आदमी था जलेसर। उसने गुजरी को देखा तो देखता रह गया। वह जमुनिया रंग की, पके फुलजामुन सी, कसे बदन की लबालब औरत थी। उसकी अस्पृश्यता और गंदे कपड़ों से निकलती दुर्गन्ध को नकारते शारीरिक आकर्षण का खिंचाव जलेसर को विचलित करने लगा।

गुजरी महसूस कर रही थी, जलेसर दादा की नजर पिल्लू की तरह रेंग रही है उसके बदन पर। झुरझुरा कर उसने नजरें उठायीं। आँखों से आँखें मिलीं। बागड़-बिलार जैसी गोल-गोल खरमस्ती से भरी आँखें थीं जलेसर दादा की। गुजरी की आँखें थरथरा कर झुक गयीं।

गलियारे में पदचाप सुनकर जलेसर हड़बड़ाया। फुसफुसाहट भरी आवाज में नीचे उतर जाने कहा और हाथ से भी इशारा करने लगा। उसके बरामदे से उतरते ही गलियारे से एक लड़का निकला और सड़क की ओर चला गया।

''घटरूवा हमरे खेत का बिल कोड़ता है और तूँ मुनरिया की दुकान से खरची लेती है?''

''उधार लेते हैं।

''ऊ तो हमरे बेटा की दुकान से भी ले सकती है।''

अब वह कैसे कहती उसका बेटा उधार वसूली के नाम पर कैसी-कैसी चुटकियां लेता है, क्या-क्या कह देता है। वह सिर झुकाये चुपचाप खड़ी रही।

''बिल से कितना मुसौनी धान निकला?''

''आधा बोरा में थोड़ा कम है। उसमें मिट्टी का टुकड़ा बहुत है।''

''चुन-फटक के दस किलो तो हो ही जायगा। पाँच किलो घटरूवा के हाथ भेज देना।''

उसे पता था ऐसे धान का किसान कोई हिस्सा नहीं लेते हैं, पर यहीबात यहाँ कहना भारी था। बावजूद इसके, कुछ कहने के लिए वह हिम्मत जुटाने लगी।

''वैसे तूँ ले के आयगी तो एक किलो से ही हम संतोष कर लेंगे।''

वह सन्न रह गयी। कहने के लिए जो साहस जुटा पाई थी, वह भी बिखर गया। उसका कलेजा धाड़-धाड़ करने लगा।

''बिल में मट्टी भर दिया है न?''

''हाँ।'' मुश्किल से बोल पाई वह।

''जोत के समय ट्रैक्टर या बैल गढ्ढे में फँस गया और...''

''कुछ नहीं होगा। बढ़िया से मट्टी भर दिये हैं।''

''सो समझो।''

''हम जाय दादा?''

''जा, पर खरची हमरे बेटा की दुकान से लिया कर और धान ले के तूँ ही आना।''

घेराबंदी के बाहर आयी तब गुजरी की जान में जान आई।

रात अंधेरी थी। ऐसे अँधेरे में कई बार वह मुसहरी लौटी थी, पर अभी बहुत ही डर लग रहा था। बार-बार लगता कि कोई पीछा कर रहा है। रास्ते में जब मुसहरी के कई लोग मिल गये तब डर पर थोड़ा काबू कर पायी वह।

''भूख लगी है। जल्दी करो।'' घटरू ने कहा।

वह लगे पाँव पड़ोसन की मूढ़ी वापस कर आयी और संझिया तैयार करने में जुट गयी। चुल्हे के पास भी जलेसर दादा की गोल-गोल आँखें उसका पीछा नहीं छोड़ रही थीं। वह अपने को समेटती रही, पर जब आक्रोश ज्यादा हो जाता तो छोलनी कढ़ाही के कोर पर पटकने लगती। कढ़ाही में पकते मूसे के टुकड़े को जल्दी-जल्दी उलटने लगती। चुल्हे की आँच तेज कर देती।

खाना बन गया तब पति-पत्नी साथ-साथ खाने बैठे। खाते-खाते गुजरी ने सारी बातें बतायी तो घटरू की आँखें थाली पर थिर हो गयीं।

वह तड़प उठा। वह सोचने 'आखिर कौन सा सामाजिक अपराध है, जिसका निश्चित परिणाम है मुसहर होना? क्यों अन्य दूसरी जातियां घृणा करती है मुसहरी से? क्यों आस-पास के लोग बहेलिया बन कर मुसहरों को मुसहरी जैसी चिपटी टोकरी में कैद रखते हैं? क्यों गाँव से थोड़ा-थोड़ा हटकर अलग-थलग बस्तियां है मुसहरों की, सभ्यता के कचरे की तरह? सभ्य दुनिया की एक बेदर्द तस्वीर-सी।'

घटरू के चेहरे परपीड़ा की गुत्थमगुत्थी पढ़ती गुजरी ने कहा ''कल मुसौनी धान चुन-फटक दूँगी। पाँच किलो जलेसर को दे आना।''

घटरू ने अपना चेहरा उठाया।

गुजरी उसकी आंखों में उतरती गयी।

ग़ज़ल

अशोक मिज़ाज़
सागर, मध्य प्रदेश

मुझ पर इनायतें हैं कई साहिबान की,
कुछ हैं ज़मीनवालों की कुछ आसमान की,
अपने सफ़र का तन्हा मुसाफ़िर नहीं हूँ मैं,
इज्जत जुड़ी है मुझसे मेरे खानदान की,
बरसात के दिन हों या कड़ी धूप के दिन हों,
हमने तकी न राह किसी साइबान की,
दफना दिया गया था जिसे बेकफन कभी,
तस्वीर पूजते हैं वो अब उस महान की,
खुसरो अमीर की या बरहमन की हो गजल
मोहताज कब रही हैं किसी भी जुबान की
हिन्दी की अपनी शान है उर्दू की अपनी शान,
दोनों ही आन बान हैं हिन्दोस्तान की

संभाव्य-संदेश

सत्य वह प्रशस्त मार्ग है जिसपर चलना प्रारंभ करना बहुत आसान है, लेकिन चलते रहना बहुत कठिन। स्मरण रखें कि कोई व्यक्ति कुछ समय तक इसे शिकस्त दे सकता है, लेकिन अंतिम सत्य यह है कि 'सत्य कभी पराजित नहीं होता'।

कविता

रूठ आया हूँ

राज हीरामन
पेरबर, ग्रांबे, मारीशस

रूठ आया हूँ।
रूठकर आया हूँ, उस बादल से,
मुट्ठी में जिसे बाँध न सका था
देखना,
पकड़ लाऊँगा एक दिन उसे...

मुँह मोड़ आया हूँ, उस बादल से,
बाहों में जिसे भर न सका था
देखना,
जकड़ लाऊँगा एक दिन उसे...
नजरें चुरा आया हूँ, उस बादल से,

नजरों में जिसे बसा न सका था
देखना,
नजरें उतार लाऊँगा एक दिन उसे...

आँसू बहा आया हूँ, उस बादल से,
बांध न सका जिसे बांध मैं
देखना,
बांधूगा बंधन में एक दिन उसे...

रूठकर उस बादल से 'प्रभु'
मैं भी तो जी न सका था
देखना,
यम से लड़ लाऊँगा एक दिन उसे...

अस्तित्व के लिए...

अमर कुमार पाण्डेय
सचिव, एस.बी.आई. अधिकारी
संघ, भागलपुर, बिहार

अस्तित्व हेतु
जब कोई संघर्ष करता है,
सुंदर दिखता है।

झपटता बाज
फन फैलाए व्याल,
दो पैरों पर खड़ी
नन्ही पत्तियां खाती बकरी,
दबे पाँव झाड़ियों में चलता चीता,
डाल पर उल्टा लटक
फल कुतरता तोता,
अति सुंदर लगता है।

हक के लिए,
बाज, व्याल, बकरी,
चीता, तोता के मानिन्द
करें संघर्ष,
मूल्य, मानवधर्म के उत्कर्ष का
संकल्प लेकर,
सुंदर दिखें हम ।

कहानी

आपकी सुनीता

अनिरूद्ध प्रसाद विमल
बांका, बिहार

पिताजी,

हाँ, पिताजी ही लिख रही हूँ। पहली बार मैं इस सम्बोधन की आत्मीयता को महसूस कर रही हूँ। सुबह जागने से लेकर रात सोने तक, अनेकों बार, यह कहते-कहते सौ तक अवश्य ही पहुँच जाते होंगे।

उस समय मैं छोटी, एक नन्हीं-सी बच्ची थी। आपको याद ही होगा कि मैं आपके ही संग-संग रहने के लिए किस तरह अपने भाई-बहनों से लड़ पड़ती थी। आपको यह भी याद होगा कि जाड़े के दिनों में, जब आप बरामदे पर रूई की तरह नरम-नरम पुआल का बिछावन लगा देते थे, उस पर तोसक और गद्दा के साथ-साथ रजाई और जब मैं उस रजाई में जगह न पाने के कारण रोने-कपसने लगती थी, तब आप किस तरह हँसते हुए मुझे अपनी गोद में ले लेते थे, मेरे आँसू को पोंछते हुए आप कहते थे - ''सन्नी रानी तो मेरी सबसे प्यारी बेटी है। यह मेरे पास ही सोयेगी।'' यह कहते-कहते आप मुझे मृगछौने की तरह अपनी छाती से लगा लेते थे। थपथपा देते थे। और मैं आपका स्नेह पाकर देर तक सुबकती रहती थी।

पिताजी, आप भी क्या सोचेंगे कि मैं आज क्या-क्या बातें सोच बैठी हूँ। सुनसान एकान्त रात है। अगहन का दूधिया चाँद आकाश में खिलखिला रहा है। मंगलवार की यह रात। रात के अभी बारह तो जरूर बज रहे होंगे। संपूर्ण गाँव ही सोया हुआ है। सिर्फ कोरयासी के कालीथान में मंगलवार होने के कारण कीर्त्तन-भजन हो रहे हैं। नहीं चाहते हुए भी, ढोलक की थाप, हरमोनियम के सुरीले संगीत और मांगन के गीत की ओर ध्यान बरबस चला जाता है, वही चिरपरिचित गीत -

'हमरा केवल भरोसा एक बजरंगी बली के'

पिताजी, क्या बतायें, मुझे तो किसी पर भी भरोसा नहीं रह गया है। देवता-पित्तर, कोई भी सहायक नहीं। उदासी और निराशा से भरा यह जीवन...सच में, यह गाँव भी अपने-आप में अजीब है...विचित्रताओं से भरा हुआ। किसी को भी किसी के घर के दुख और मातम से कोई मतलब नहीं है। रोग हो याकि भय-भगवान के इस कीर्त्तन-भजन को भी किसी से कुछ मतलब नहीं। मगर यह भजन तो चलता ही रहता है और मैं इस अकेली रात में बैठकर आपको यह पत्र लिख रही हूँ। यह भी नहीं जानती कि क्यों लिख रही हूँ। फिर क्या हो जायेगा यह लिखने से ही? लेकिन लिखना तो है ही। याद कीजिए, आपने ही तो कहा था पिताजी कि जब विपत्ति में मुझे कोई साथ न दे तो मैं आपको याद करूँ। इतने उल्लेख भर से पत्र लिखने का उद्देश्य कुछ-कुछ तो स्पष्ट हो ही जाता है। आखिर यह लिखना भी तो मेरे किसी लक्ष्य की सिद्धि के लिए ही है।

...इस बार जब मैं ससुराल के लिए चलने लगी थी तो मैंने माँ से कहा था कि मुझे वहाँ नहीं जाना। मेरी वह ससुराल, ससुराल होने की रत्ती भर भी शर्त्त पूरा नहीं करती। मेरी जिन्दगी तो रेगिस्तान में उगी नागफनी के फूल की तरह बन गई है। अब यह आपसे कैसे कहूँ पिताजी कि इस बात पर माँ का उत्तर याद कर अब मुझे कितना रोना आता है और वह उत्तर भी निश्चय ही माँ ने आपसे गहरे विचार-विमर्श करने के बाद ही कहा हो। मैं कटे हुए वृक्ष की तरह बिछावन पर गिर गयी थी। कितने घंटों तक रोती रही थी। बेटी पराई होती है, जहाँ चाहें, जिस खूँटे से बाँध दें। कोई माँ उसे नहीं रख सकती है। ब्याह के बाद वह सिर्फ ससुराल की चीज होती है।

सच कहती हूँ बाबूजी, माँ के उस बेधड़क जवाब से मैं जीवन में पहली बार इस तरह से आहत हुई थी, और उस रात में ही जो फैसला लिया था, उसे ही आज पूरा करने जा रही हूँ। मैं...यानि आपकी सुनीता...आह, सच में, समूची बेटी जाति ही मात्र वस्तु भर होती है। सिर्फ वस्तु। बाजार में खरीदने-बिकने वाली मात्र वस्तु भर। प्रतिदिन के दुख से भरी अपनी इस जिन्दगी से जितना दुख मुझे नहीं है, उससे कहीं ज्यादा इस बात की है कि क्यों माँ ने मुझे वस्तु तक कह दिया था। इसी एक बात ने तेज हवा में हिलने वाले पत्ते की तरह मुझे झकझोर कर रख दिया था। मैं तो उसी दिन मर गई थी। सिर्फ कहने को जिन्दा हूँ। सोचती हूँ, इस तरह जीने से क्या? रोज-रोज मरने से तो अच्छा है - एक बार मर ही जाऊँ। आप एकमात्र मेरे सहारा थे, वो भी नहीं रहे। यह इतनी बड़ी जिन्दगी बिना आपके दिलासे के कैसे काटूँगी।

मेरे सबसे ज्यादा पूज्य बाबूजी, मरने से पहले मैं सिर्फ इतना ही पूछना चाहती हूँ कि आपने मुझे जनम क्यों दिया? क्या आपने जन्म देने वाले के कर्त्तव्य को पूरा किया? क्या ब्याहने भर से बेटी की जिम्मेदारी से मुक्ति मिल जाती है? मुझे मालूम है, इसका कोई जवाब आपके पास नहीं है। शायद आप भी यही मान लें कि मेरी किस्मत में यही लिखा था। कारण कि आप तो तकदीर पर ही भरोसा करने वाले हैं। आप यह भी सोच सकते हैं कि एक नहीं, बहुत सी सुनीता मरती रहती है। उन्हीं सुनीताओं में मेरी भी एक सुनीता थी। कोई कुछ सोचकर दुखित हो या न हो, लेकिन सवाल के कठघरे में खड़ा रहकर कोई अपने को नहीं बचा सकता है।

बाबूजी, आप मेरी निश्छल आँखों की भाषा पढ़ने में एकदम असमर्थ रहे या पढ़-समझकर भी उसको किनारे कर दिया। मैं यह नहीं बताना चाहती कि आपने ऐसा क्यों किया। पर आप तो ऐसे न थे। फिर कौन ऐसी परिस्थिति थी कि आपको अपनी सबसे प्यारी बेटी को मौत के मुँह में डालना पड़ा...? याद होगा आपको, मैंने कहा था कि नारी को समाज में अपनी सार्थकता सिद्ध

करने का अवसर मिलना चाहिए। मैं तो क्लास में अच्छा ही कर रही थी। याद होगा, आपने मेरी वाक्शक्ति और साहित्यप्रेम को देखकर कहा था, ''मेरी बेटी कवयित्री बनेगी। एक सिद्ध साहित्य-साधिका।'' माँ के सामने आपने इस बात को कई बार दोहराया था। फिर यह क्या हुआ कि अठारह साल की हुई नहीं कि आपने मुझे ब्याह दिया। एक ऐसे खूँटे में बाँध दिया, जहाँ से मैं अपनी इच्छा को जलती-मरती ही देखती रहूँ। मेरी इस विकलता, छटपटाहट को समझने वाला कोई नहीं है। एक दादाजी हैं, मेरी ददिया ससुर, जो अपनी बूढ़ी आँखों से सबकुछ घूरते रहते हैं।

...बाबूजी, आपकी सुनीता अभी सोलह श्रृंगार करके बैठी है। घर में मैं एकदम अकेली हूँ। दादाजी, ऊपरवाले अपने कमरे में सो रहे हैं और जिसके साथ मेरे सात फेरे पड़े हैं, वह कीर्त्तन गाने वाले के पीछे कीर्त्तन गाते और गाँजा पीकर, वहीं कालीथान के किसी कोने में सो गये होंगे। मेरा यह सुन्दर स्वस्थ शरीर, जिसे देखकर आप कहा करते थे - ''कोई रूपवती हो तो, मेरी बेटी सुनीता की तरह। एकबार ही कोई देखे तो पसन्द कर ले।'' आज मैं अपनी वहीं खूबसूरती और स्वास्थ्य की आग में झुलस रही हूँ। ऐसा कोई भयानक रोग, जो जान ले ले, मैं उसके लिए तीन सालों से भगवान से प्रार्थना करती-करती थक गयी हूँ। हे ईश्वर ! ऐसा हो जाता।

आप कहते थे - ''बेटी धनवान घर में जा रही है।'' आप ठीक ही कहते थे - इस घर में धन की कमी तो बिल्कुल नहीं है। सारी सुविधाएँ भी हैं। पक्के का आलीशान मकान, चारों ओर पोखरा-पाटन व जेवर-गहनों से भरी हुई रहती है आपकी सुनीता, लेकिन जैसे सबकुछ ही व्यर्थ-व्यर्थ सा...। बस इस घर में कुछ नहीं है तो उनका प्यार। पति का वीतरागीपन और उनकी आँखों में उभरने वाली शून्यता - मुझे सालते हैं। अब तो एकदम तंग आ चुकी हूँ। यहाँ तक कि मुझे अपने आप से ही घृणा हो चली है....तब मुझे अपने आप पर कितना गौरव था और कितनी बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ भी मेरे मन को घेरे रहती थीं।

...मैं यह स्वीकार करती हूँ कि आपकी सुनीता अब हार रही है। हो सकता है, इससे आपके माथे पर कोई कलंक भी लग जाये। मुझे केन्द्र में रखकर सवल उठेंगे, ढेर सारे सवाल और उन सारे सवालों की बौछार से आप सबों के मन दग्ध हो उठेंगे। शायद मुझे ही लोग कोसेंगे, आखिर वह हार क्यों गई जिन्दगी से?... लेकिन मैं कर भी क्या सकती हूँ, लाचार हूँ जिन्दगी से। बहुत सहा, अब सहने की हिम्मत नहीं रही।

आप कितने सरल और सीधे हैं मेरे पिताजी। डोली पर मेरे बैठने के समय आपका अनायास ही रो पड़ना और फिर तीन सालों के बाद मेरी विदाई के वक्त आपके रो पड़ने में कोई अन्तर न था। मैं कुछ भी न बोल पाई थी....उस दिन, वह माँ का रूदन, मैं तो कभी भी नहीं भूल सकूँगी। मृत्यु के बाद भी माँ का वह दुख जैसे मेरे साथ ही लगा रहेगा। सच में, माँ के आँसू की कीमत कौन चुका सकता है। मेरे और आपके बीच माँ का झूलता प्यार मैं कभी भुलाये भी नहीं भूल पाती हूँ... पत्नी और माँ की एक साथ जिम्मेदारी निभाती और टूटती माँ की वह आकृति...उस समय माँ किस तरह रो रही थी। जैसे आजतक वह मेरे मन में बैठी रो रही हो। हाय, अभागिन अबला! पति और सन्तान के बीच रस्सी की तरह कसती जाने वाली औरत अपने को संतुलित रखने में ही टूटती जाती है। असमंजस के बीच पलती औरत जैसे आगिन पर ही तो चलती रहती है। आग ही पीती रहती है, आग पर जलती रहती है।

...कहीं फूट-फूटकर रो न पड़ूँ, कहीं कलेजा मुँह के बाहर नहीं आये इसलिए अपने बीच के अधरों को मैंने अपने दाँतों मे दबा लिया है। रोने से कहीं खाँसी न आ जाये, इसी से विवश होकर अपने बांये हाथ को कभी-कभी अपने मुँह पर रख लेती हूँ कि कहीं दादाजी की नींद न उचट जाये और आत्महत्या के मेरे कठोर निर्णय में कहीं बाधा न पड़ जाय। ऐसे में सिर्फ मेरी आँखें ही खुलकर बह रही हैं। उन्हीं आँखों से, जिनके कोरों में कभी कविता का आकाश दिखता था। आज वे ही आँखें कितनी निस्तेज बनी हुई है।

...पिताजी, इस समय, इतने बड़े कमरे में सिर्फ मैं हूँ और मेरी छाया। मेरे प्रश्नों के उत्तर में सिर्फ मेरे ही जवाब मिलते हैं। और हठात् ही फिर यह डर बन जाता है कि दादाजी की नींद न खुल जाये...। हाँ, कितना स्नेह रखते हैं मुझसे दादाजी। रिटायर्ड जज हैं। न्याय-अन्याय सब समझते हैं। मुझे मानते भी बहुत हैं - बेटी से भी बढ़कर। फिर मुझे छोड़कर उनका सहारा भी तो कोई नहीं है। वैसे थे तो बहुत, लेकिन नौकरियाँ मिलते ही एक-एक कर सभी शहरों में जा बसे। अगर आते भी हैं तो बस होली में और उन्हें जो मिलता है, झोल-झँवार कर ले जाते हैं। हाँ, घर में एक नौकरानी जरूर आती है - बर्त्तन-वासन करके चली जाती है। इसके बाद घर में वही भांय-भांय।

फिर तो मैं और यह घर ही बचा रहता है। अपने आप से बस, झगड़ती रहती हूँ। ज्यादा-से-ज्यादा, एक-दूसरे की ठिठोली करते हैं, कहाँ तक कहें बाबूजी, घर के ऐसे ढेर सारे सवालों से मैं हमेशा काँप-काँप उठती हूँ। किसी भी तरह मुझे उन सवालों के उत्तर नहीं मिलते। फिर सोचने लगती हूँ, आखिर क्या हूँ मैं ? मेरी जरूरत ही क्या है? कहिये, क्या आप सब मिलकर ही मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दे पायेंगे? यह भी हो सकता है कि आप कहें - इन सारे प्रश्नों के उत्तर मेरे पति ही दे सकते हैं। लेकिन मैं अपने पति को ही कहाँ खोजूँ? कहाँ मिलेंगे वह? वह तो कभी घर में रहते ही नहीं। इस गाँव से लेकर उस शहर तक बिना कारण के भटकते रहते हैं - कभी काका के यहाँ तो कभी मामा के यहाँ और फिर कभी किसी मित्र के यहाँ ही। गाँव लौटते भी हैं तो बस दोस्तों के यहाँ पड़े रहते हैं। कोई काम नहीं है। कोई सरोकर नहीं है दुनिया जहान से। इतनी सुख-संपत्ति होने के बावजूद नौकरी के लिए आजकल फिर वही हाथ-पाँव पटकना। उनकी इस हालत को देखकर कभी-कभी तो महसूस होता है, जैसे नौकरी ही उनके लिए माँ-बाप और पत्नी हो।

...कभी-कभी इच्छा होती है कि उनसे निपट लूँ। मर्यादा से बँधे इन पैरों पर कालीथान तक चलकर अपने पति को पकड़ कर घर ले आऊँ और उन्हीं से पूछूँ कि आखिर मैं क्या हूँ? आखिर मैं किसलिए हूँ? इस घर में मेरी क्या

जरूरत है? लेकिन फिर सोचती हूँ - यह काम औरत का नहीं है। औरत की एक सीमा जो होती है। सीमा के भीतर ही नारी की शोभा भी सुरक्षित रहती है। यही सोचकर अचानक पाँव भी रुक जाते हैं। आह, यह औरत भी विधाता की कैसी लाचार कृति है। पुरूष के घमण्ड भरे अधिकार में रहकर भी यह प्रसन्न रहने का ही प्रयास करती है।

...शायद मैं बहुत लिख गई। आदमी जब विवश होता है तो वह जायज-नाजायज कुछ का भी ज्ञान नहीं रख पाता है। आपकी सुनीता भी उसी हालत में है। बहुत दुखी है। इसे मरना ही चाहिए...शायद, मेरी यह चिट्ठी आपको मेरे ही कमरे में रखी-पड़ी मिले। और तब तक मैं इस निरुद्देश्य जीवन से बहुत दूर चली जा चुकी हूँगी...औरत तो वस्तु भर ही न होती है। एक जायेगी तो दूसरी चली आयेगी।

...नहीं चाहते हुए भी मैं यह चिट्ठी लिख गई हूँ। लेकिन इस पत्र से आपको दुखित करना या रुलाना मेरा लक्ष्य किसी तरह नहीं है। अपने माता-पिता से, कम-से-कम इतना-सा दुख बताने का अधिकार तो बेटियों को होता ही है। आपको मैंने अपने बचपन से ही बहुत तंग किया है, अब नहीं करूँगी...तब आपकी सुनीता, हाँ मैं ही, आपको कितना तंग किया करती थी। गोद में बैठ-उछल कर ही तंग नहीं करती...खेलने के लिए दूर-दूर तक भाग जाती और फिर आपके बुलाने पर भी नहीं आती...कभी-कभी तो जरूरी कागज-पत्तर भी इधर-उधर कर दिया करती - आपके गुस्से और तनाव का बिना कुछ फिक्र किए। सारी बातें इस समय कितना पीछा कर रही हैं।

...रात उसी तरह अपने आप में डूबी हुई थी। वैसी ही चाँदनी और शीतल हवा से भींगी रात...कि तभी, तेज हवा का एक झोंका खटाक की आवाज करती कमरे के दरवाजे से अंदर चली आयी थी। पत्र का पन्ना इधर-उधर बिखर गया था। सुनीता ने एकबार पत्र के उन बिखरे पन्नों को देखा, लेकिन उन्हें समेटने की कोई कोशिश नहीं की, बस देखती ही रही। तेज हवा का फिर वही झोंका...और उस झोंके के साथ सुनीता का दिमाग भी उड़ने लगा था। कुछ देर तक ऐसी ही मनः स्थिति मे रहने के बाद वह एक मजबूत, लेकिन दुःसाहस भरे निर्णय के साथ उठी और रात के उस गहरे सन्नाटे में घर से बाहर निकल गई।

आहटें पाकर दादाजी की आँखें खुल गईं। वह उठे और अपनी कोठरी की खिड़की से बाहर झाँकते हुए पैरों की आवाजें पहचानने की कोशिश करने लगे। उन्होंने साफ-साफ महसूस किया कि औरत की एक छाया उसके घर से निकली थी और तेजी से कालीस्थान की ओर बढ़ती चली गई थी। उन्हें उस छाया को पहचानते देर न लगी। दादाजी के अधेरों पर एक हल्की मुस्कान तैर गयी और वे बुदबुदाये - ''यह तो बेटी सुनीता ही है।'' उन्हें लगा, मन पर बरसों से पड़ा बोझ अचानक ही हट गया हो।

क्यों न मैं भी

डॉ0 अलका अग्रवाल
ऐसोसियेट प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग,
चंदौसी, उत्तर प्रदेश

क्यों न मैं भी इक चिड़िया बन जाऊँ,
छोटी चंचल आँखों को घुमा फुदका करूँ।
बिन आगा-पीछा सोचे हर सुबह चहका करूँ,
नव प्रभात के आगमन पर कूद-मटक्का करूँ।।
हर घर के आंगन में चावल खाने उतरा करूँ,
आहट पे दवा चोंज में चावल फुर्र हो जाया करूँ
मुंडरे पे बैठ मौसम से खूब अठखेलियाँ करूँ,
साफ आसमाँ में सुर मिला गीत गया करूँ।।
पत्तों की सरगोशियाँ सुन बदन फुलाया करूँ,
तिनके चुन फूस के घोंसला नरम बनाया करूँ।
दे दिन-रात गर्मी अंडों को जिलाया करूँ,
दाना-दाना बीनकर नन्हें शिशुओं को खिलाया करूँ।।
बड़ा होते ही जरा उड़ने की कला सिखाया करूँ,
अपने ही बल पर जीने का पाठ बताया करूँ।
युवा होते बच्चों से उनका नीड़ बनवाया करूँ,
अलग होने पर उनके आँसू न बहाया करूँ।।
जग की रीति समझ खुद को समझाया करूँ,
बनके दूत ईश्वर का प्यार का पैगाम फैलाया करूँ।
ये सुदूर गगन में परवाज करते परिंदे मुझे बुलाते हैं,
खुले आसमां तले ये वादियाँ सतरंगी सपने बिखराते हैं।।
मन में उमड़ते-घुमड़ते सवालों का जवाब सुझाते हैं,
चिड़िया के सुनहरे संसार का मनचाहा स्वप्न दिखाते हैं।।

वैचारिक लेख

''वैश्वीकरण के दौर में नारी''

संयुक्ता गुप्ता
भागलपुर, बिहार

आज वैश्वी करण के दौर में नारी का बहुआयामी स्वरूप एक नई सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने तेजी से विकास की ओर अग्रसर है। एक तरफ जहाँ प्राचीन अप्रासांगिक विचारधारा को चुनौतियां मिल रही हैं, तो दूसरी ओर पुरूष मानसिकता द्वारा प्रदत्त सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थिति को नकारा जा रहा है। समाज एवं संस्कृति के द्वारा नारी का विशिष्ट निर्माण ''नारीयता'' है, जिसके माध्यम से उसकी प्रस्थिति, भूमिका, पहचान, सोच, मूल्य एवं अपेक्षाओं को गढ़ा जाता है। नारीयता के निर्माण की प्रक्रिया समाज की संस्थाओं, सांस्कृतिक मूल्यों एवं व्यवहारों, प्रथाओं, रीतिरिवाओं, लिखित एवं मौखिक ज्ञान परम्पराओं, ध ार्मिक अनुष्ठानों तथा नारी-अपेक्षित विशिष्ट मूल्यों से स्थापित होती है। जन्म से ही बालिका को क्षमा, भय, लज्जा, सहनशीलता, सहिष्णुता नमनीयता आदि के गुणों को आत्मसात् करने की शिक्षा प्रदान की जाती है। इस तरह समाजीकरण का निर्धरण पुरूष प्रधान मानसिकता वाले समाज द्वारा किया जाता है। फलस्वरूप यह विचार-धारा पुरूष एवं स्त्री के बीच की असमानता को अस्वीकार करके नारी की विरोधात्मक प्रक्रिया को बौद्धिक एवं क्रियात्मक रूप प्रदान करती है।

पुरूष और नारी के बीच की कशमकश से संघर्ष करती आज की नारी में छटपटाहट है आगे बढ़ने की, जीवन एवं समाज के प्रत्येक क्षेत्र में कुछ कर गुजरने की, अपने अविराम अथक परिश्रम से पुरी दुनिया में एक नया सवेरा लाने की जिसमें नारी को अबला के रूप में न देखा जाय। पर वास्तव में, भारत ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व में मुख्यतः व्याप्त पुरूष प्रधान समाज ने एक ऐसी सामाजिक संरचना निर्मित की जिसमें प्रत्येक निर्णय लेने संबंधी अधिकार पुरूषों के पास ही सीमित रखे। आदिम समाज से लेकर आधुनिक समाज का ऐसा भेदभावपूर्ण नजरिया नारी को या तो 'देवी' बनाया या फिर 'योग्य वस्तु'। उसके व्यक्तित्व को उभरने का अवसर प्रदान नहीं किया गया। नतीजा नारियों को सिर्फ एक ''अवैतनिक श्रमिक' एवं 'उपभोग की वस्तु' के रूप में देखा गया। 'मनुष्यता' की अपेक्षा एक मनुष्य के प्रति हो सकती है, एक वस्तु के प्रति नहीं। इसलिए कभी समाज ने उसे 'नगर बधू' बनाया तो कभी 'देवदासी', कभी 'दुर्गा' बनाया तो कभी ''कुलीन मर्यादापूर्ण घर की बहू''। पुरूष मानसिकता ने कभी भी उसे एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में नहीं देखा। इसके पीछे की मानसिकता की अब कितनी भी सामाजिक-सांस्कृतिक व्याख्या प्रस्तुत की जाय, लेकिन सदियों से दासता की जंजीरों में जकड़े स्त्री-समुदाय में अपनी दासता की मानसिकता से बाहर निकलने में अभी भी समय लगेगा। जैसे-जैसे उसका अनुभव प्रत्यक्ष एवं व्यापक होता जा रहा है, वैसे-वैसे वह अपने अधिकारों एवं स्वतंत्रता-समानता के प्रति सचेत होती जा रही है। किसी दफ्तर में काम करने वाली स्त्री, किसी बस में, मेले में, सड़क पर चलती स्त्री, घरेलू स्त्री की भाषा से अलग भाषा होती है; उसके अनुभव नये होते हैं, यहीं उसे नई भाषा मिलती है। यहीं से नया चिंतन शुरू होता है। उसके अनुभवों का होना हीं स्त्री का उत्तर आधुनिक चिंतन है। पुरूष की भांति जीवन में घर से बाहर निकल कर संघर्ष करना चाहती है। किन्तु आज भी समाज कभी माँ के रूप में, कभी पत्नी के रूप में, कभी बहन के रूप में, कभी बेटी के रूप में, तो कभी अबला के रूप में हमेशा उसका मानसिक दोहन करता है। महिला दिवस आयोजन के बाद भी आज नारियों के प्रति सामाजिक सोच एवं संस्कृति में सकारात्मक परिवर्तन नहीं हो पा रहा है। आत्मीयता की शीतल चाँदनी नारी के लिए मृगमरीचिका बनकर रह गई हैं। प्रारंभ से ही इस नारी जीव-देह-धारी को अनेक त्रासद स्थितियों से गुजरना पड़ा है। आज भी यह यातना के आजीवन कारागार से मुक्त नहीं हो पाई है। नारी जाति पुरूष-वृक्ष के मध्य लता की भाँति है। फूलने-फलने के लिए लता को वृक्ष की सहायता चाहिए-ही-चाहिए। धरती पर तो लता फूलने-फलने से रही। 'कोई पैरों रौंधता है, तो, कोई दाँतों काटता है। अपने मान-सम्मान, ईमान एवं इज्जत तथा मूल्यों को नेस्तनाबूद करने वाले पुरूष से तंग आकर वह आत्महत्या तक करना चाहती है। नारी शरीर पर चोट खाकर मरजाने से हृदय पर लगी चोट के साथ जिंदा रहना कहीं अधिक दुखद समझती है। एक नीच प्रकृति के वहशी इंसान का असहनीय अत्याचार और अश्लील ढंग से पशुवत व्यवहार छोटी-छोटी बच्चियाँ झेल रही है। शर्मसार मानवता चिग्धार करती - महात्मा बुद्ध, कबीर, टैगोर, विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, मार्टिन लूथर किंग, अब्राहम लिंकन, और मदर टेरेसा ऐसे मानव को पुकारती है। जिन्होंने दुनिया में मानवता के विकास के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया।

मानवता छोटी या बड़ी नहीं होती, यह आत्मा और हृदय से प्रेरित होती है। इसे बढ़ावा देने के लिए मानवता वादी शिक्षा की आवश्यकता है, मानवीय समस्याओं के विरूद्ध संवेदनशील मानव तैयार करने की आवश्यकता है, विवेकपूर्ण संतुलित व्यक्तित्व के लिए सृजनात्मक शिक्षा की आवश्यकता है, साथ ही मनुष्य में पूर्णता एवं श्रेष्ठता का विकास करने की आवश्यकता है। व्यक्ति में सामाजिक गुणों को जागृत करने और उसके विचार प्रणाली को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। और यह हर आवश्यकता की संभावना **संभाव्य** है। बस जरूरत है अभी से प्रयास करने की।

चार कविताएं

ईंजी. दीप्ति शर्मा
आगरा

1. आवाज़...

आवाज जो
धरती से आकाश तक
सुनी नहीं जाती
वो अंतहीन मौन आवाज़
हवा के साथ पत्तियों
की सरसराहट में
बस महसूस होती है
पर्वतों को लांघकर
सीमाएं पार कर जाती हैं
उसपर चर्चायें की जाती हैं
पर रात के सन्नाटे में
वो आवाज़ सुनी नहीं जाती
दबा दी जाती है
सुबह होने पर
घायल परिंदे की
अंतिम साँस की तरह
अंततः दफन हो जाती है
वो अंतहीन मौन आवाज़

2 इच्छाएँ...

अक्सर खाक होकर भी
पनपती हैं इच्छाएँ
जो अन्दर ही
खोज लेती हैं राह
और कभी अपने
छुपने की जगहें भी।

3. दंश...

स्त्री होने का दर्द
कसिटता है
कचोटता है मन के भीतर
अनगिनत तारों को
वो रो नहीं सकती
कुछ कह नहीं सकती
बाहर निकली तो
मर्यादा का डर
सबसे ज्यादा घर से मिले
संस्कारों का डर
तो कभी
आलोचना का डर
नियमों का डर
कायदों का डर
जो गिरा देता हैं आत्मविश्वास
फिर भी हँसती है
वो छटपटाती है और
अपने ही सवालों से घिर जाती है
हर एक दायित्व बस
उसी से जोड़कर देखा जाता है
कहा जाता है
मर्यादा मे रहो
समाज की सुनो
प्रेम ना करो
किया तो मार दी जाओगी
बस आँख बंद कर
इस सो कोल्ड समाज की
मर्यादा का पालन करो
और ये न भूलो कि
तुम एक स्त्री हो
ये समाज के रखवाले
ठेकेदार बन
चूस लेंगे खून
जीने नहीं देंगे
और कहेंगे
सहना पड़ेगा ये दंश
तुम्हें उम्रभर
क्यूंकि तुम एक स्त्री हो।

4. खामोशी...

मांग करने लायक
कुछ नहीं बचा
मेरे अंदर
ना ख्याल, ना ही
कोई जज्बात
बस खामोशी है
हर तरफ अथाह खामोशी
वो शांत हैं
वहाँ ऊपर
आकाश के मौन में
फिर भी आंधी, बारिश
धूप, छाँव में
अहसास करता है
खुद के होने का
उसके होने पर भी
नहीं सुन पाती मैं
वो मौन ध्वनि
आँधी में उड़ते
उन पत्तों में भी नहीं
बारिस की बूंदों में भी नहीं
मुझे नहीं सुनाई देती
बस महसूस होता है
जैसे मेरी ये खामोशी
आकाश के मौन में
अब विलीन हो चली हैं।

बेटियां

राजेन्द्र पंजियार
भागलपुर, बिहार

बेटियां का विश्व होता है निराला
वे सदा सौगात में लातीं उजाला
गेह में जिसके नहीं मुधमास होता
छलक सकता वहां कैसे सुरभि प्याला

विश्व-वन की वृक्ष छायादार बेटी
सदा सबके लिए रही उदार बेटी
हाथ में पत्थर लिए जो पास आया
फल दिए उस हाथ को रसदार बेटी

बेटियां घर का सदा श्रृंगार होतीं
सृष्टि का अनुपम मधुर उपहार होतीं
चन्द्र किरणों में विकसती कुमुदिनी-सी
पर कुचलते कदम पर बेजार रोतीं

बेटियां होतीं चटखती नव कली-सी
बात करतीं तो लगे मिश्री डली-सी
ब्याह के कुछ बाद यह क्या हो गया है
मलिनता मुख की लगे रोटी जली-सी

बेटियां जब ब्याह कर लेती विदाई
वृक्ष पर चट्टान रख सहते जुदाई
लौटकर ससुराल से जब मुस्कुराती
हर्ष में हम डूब बिसराते बिवाई

दे रहा दस्तक हमारे द्वार वह दिन
क्वांरियां नवरात्र पर ढूंढे मिलेंगी
बालकों को तब जिमाने से भला क्या
मनोवाञ्छित पुण्य की कलियां खिलेंगी?

लोग भूखे भेड़िये अब हो रहे हैं
यौन-सुख की भूख भीषण ढो रहे हैं
बयां कैसे करूं क्या हालात है अब
बेटियों के प्राण आकुल रो रहे हैं

प्रगति का इतिहास बेटी रच रही है
शौर्य का संसार बेटी रच रही है
अरे पापी क्यों जलाते बेटियों को
बेटियां मधुमास घर-घर रच रही हैं

जीवन-दर्शन

नक्षत्र विज्ञानवेत्ता 'चंद्रशेखर'

मितेन्द्र कुमार मितेश
फोनिक्स, एरिजोना, अमेरिका

20वीं शताब्दी में सुब्रह्मण्यम चन्द्रशेखर अपने जीवन काल के समय 'सबसे बड़े वैज्ञानिक' थे। विश्व का सर्वोच्च नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले चन्द्रशेखर का व्यक्तित्व अद्‌भुत प्रेरणादायक था। इन्होंने तारों की रचना और उनके भौतिक गुणों के जिन पदार्थों पर शोधकार्य किये उससे ही पृथ्वी और सूर्य का निर्माण हुआ है, उन्हीं पदार्थों से तारे और ग्रह बने हैं। तारों की गतिविधियों पर भौतिकी के नियमों की सहायता से नई-नई खोज की और अपनी खोज में यह सिद्ध किया है कि सूर्य अनन्त काल तक एक अवस्था में नहीं रहेगा। जैसे-जैसे उसका जलने वाला ईंधन घटता जायगा, वैसे-वैसे उसके आकार में परिवर्तन होगा। जब सूर्य का आकार बड़ा होगा तो वह बुद्ध ग्रह को हड़प लेगा और जब शुक्र की बारी आएगी तो उसे भी अपने अधिकार में लेने के बाद यह पृथ्वी को निगल जायगा। लेकिन अभी उस दिन के आने में 5 अरब साल बाँकी हैं। इन्होंने अपने शोध में यह भी लिखा है कि प्रलय का वह दिन जरूर आएगा।

पृथ्वी से सूर्य तक की दूरी लगभग 9 करोड़ 30 लाख मील है। लेकिन सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर पहुँचने में केवल 8⅓ मिनट लगता है। वायु के घनत्व के अनुसार पृथ्वी से सूर्य और अन्य तारों के प्रकाश का रंग भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ता है, क्योंकि मंद वायु के घनत्व पर तारों के प्रकाश की तीव्रता आधारित होती है। प्रकाश जब पृथ्वी की ओर अग्रसर होता है तो वायु की गति को उसकी किरणों की दिशाएँ मोड़ देती हैं। इसी वजह से तारे टिमटिमाते हुए दिखाई देते हैं।

चन्द्रशेखर भारत के साथ-साथ अमेरिका के भी नागरिक थे। उनका कहना था, 'मैं भारत से इसलिए विदेश गया था, क्योंकि यहाँ अनुसंधान के लिए आवश्यक साधनों का अभाव था। अंग्रेजी हुकूमत होने के नाते भारतीय वैज्ञानिकों को सुविधाओं से वंचित किया जा रहा था। इसलिए मैंने विदेश जाना बेहतर समझा। इसका मुझे खेद भी है। लेकिन मुझे खुशी भी होती है कि मैंने वैज्ञानिकों की दुनिया में अपना, अपने देश का और अपने घर-परिवार का नाम रौशन किया है।

''तारों की संरचना और क्षोभ सिद्धान्त'' नामक विषय चन्द्रशेखर का प्रमुख अनुसंधान विषय रहा है। उन्होंने अपने सभी महत्वपूर्ण अनुसंधानों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित कराया है। सन् 1939 में शिकागो विश्वविद्यालय के प्रेस ने उनकी पहली पुस्तक 'ऐन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ स्टैला स्ट्रक्चर' का प्रकाशन किया था जिसमें सितारों की संरचना पर बड़ी गहनता से प्रकाश डाला गया है। विश्व प्रतिष्ठित नोबेल पुरस्कार से सम्मानित ''चन्द्रशेखर लिभिट'' इनकी इसी रचना ने कराई।

कभी आपने सोचा है कि तारे कैसे जन्म लेते है, कैसे जीवित रहते हैं और कैसे तथा क्यों मर जाते हैं। यह एक विस्तृत विषय है, जिसे श्री चन्द्रशेखर ने अपनी 'चन्द्रशेखर लिभिट' में समेटा है। संक्षिप्त में इतना बता देना काफी होगा कि यदि कोई तारा सूर्य के घनत्व का 1.4 गुणा है तो उसे बौने तारे की संज्ञा दी जाती है। यदि तारे का घनत्व इस लिमिट को पार कर जाता है तो उसे 'सुपरनोवा' की संज्ञा दी जाती है। वैसे 'चन्द्रशेखर लिमिट' पूर्ण तथा गणितीय संगणनाओं पर आधारित है। यदि एक कप बौने तारों का भार एक पलड़े पर रख दिया जाय और दूसरे पलड़े पर 25 हाथियों के बराबर भार रखा हो तो भी बौने तारों का भार अधिक होगा।

डॉक्टर चन्द्रशेखर एक महान खगोलविद्, गणितज्ञ और उच्च कोटि के भौतिक शास्त्री भी थे। गणित में महत्वपूर्ण खोज के लिए उन्हें कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने 'एडम्स पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था। वे भारत सरकार के 'पदम विभूषण' पुरस्कार से नवाजे गए थे। इतना ही नहीं, भारतीय, विज्ञान अकादमी ने सन् 1961 में 'रामानुजन पदक' से उन्हें सम्मानित किया गया था। इस पदक को उन्होंने सन् 1968 में भारत आकर प्राप्त किया था।

चन्द्रशेखर महान गणितज्ञ रामानुजन के प्रति आजीवन कृतज्ञता प्रकट करते रहे। जब वे मात्र 10वर्ष के थे तभी उनकी माँ ने उन्हें रामानुज के बारे में बताया था। इसलिए चन्द्रशेखर उन्हें प्रेरणा पुरूष मानते थे। उनके मन में तभी से एक महान वैज्ञानिक बनने की उमंग पैदा हो गई थी। मगर विकास के रास्तों से वे उस समय अपरिचित थे। जब वे इंग्लैण्ड गये तो भारत में उनकी माँ गंभीर रूप से बीमार पड़ गईं। सी.वी.रमण उनके मामा थे, लेकिन उनसे उनकी मां के संबंध अच्छे नहीं थे। इसके बावजूद चन्द्रशेखर की मां उन्हें यही सुझाव देती थीं कि रमण से अच्छे संबंध बनाकर रखना ताकि उन्हें उनसे विज्ञान के क्षेत्र में अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त हो सके। चन्द्रशेखर नौजवानों से अकसर यही कहा करते थे कि महान आदमी जन्म से महान नहीं होता, बल्कि वह अथक परिश्रम करने के बाद महान बनता है। इन्होंने अपने अनेक महत्वपूर्ण अनुसंधानों से वैज्ञानिक जगत को संपन्न बनाया। इससे भारत का गौरव भी विश्व में बढ़ा। चन्द्रशेखर जी लगभग 85 वर्षों तक हमारे बीच रहे। 21 अगस्त 1995 को शिकागो में अपने जीवन की आखिरी सांस ली। वैज्ञानिक क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करने वाले चन्द्रशेखर भारतीयों के बहुत चहेते हैं। उनके प्रति भारतीयों की चाहत हमेशा बनी रहेगी।

कविता

उम्मीद की कंदील !

अभिनव अरुण
वरिष्ठ उद्घोषक, आकाशवाणी, वाराणसी

पिछले कुछ दिनों से परेशान
परेशान है मेरा संवेदनशील हृदय
जबसे बाजारों में आहट मिली है कि
आने वाला है वैश्विक प्रेम पर्व
सभी आतुर हैं संत वैलेंटाइन के योगदान को स्मरण करने को
मैंने भी चाहा इस अवसर पर लिख सकूं एक प्रेम पगी कविता
कई बार देर तक डूबा रहा स्मृतियों - विस्मृतियों की सोच में
बार बार ख्याल आते रहे
कि कैसे चंद्रयानी योजनाओं
और फ़ोर्ब्स की सूची से संपन्न धनाढ्यों के देश में
अपनी छोटी से छोटी इच्छाओं को
सकुशल और सहजता से पूरा नहीं कर पाता हाशिये का आदमी
कैसे कुचल दी जाती है उसकी इच्छाएं और अक्सर उसकी देह भी
वृद्धावस्था पेंशन या एक राशन कार्ड का मिलना
उसके लिए नहीं होता वैलेंटाइन-डे के कार्ड सरीखा
खेत बिक जाते हें इलाज में और रखी रह जाती हैं
ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की उम्मीदें ब्लोंक की फाइलों में
कैसे कुम्भ नहाने पुण्य कमाने गया उसका कुनबा
बिखर जाता है मोहन - जोदड़ो की सभ्यता सा
कैसे उसकी छोटी-छोटी उम्मीदें जो हम शहरियों के हितों से कभी नहीं टकराती
गाँव की चौहद्दी के भीतर दम तोड़ देती हैं
कोई ह्यूमेन राइट नहीं होता उसका
वह कभी राइटर की खबर नहीं बनता
बूट हमारे हों या अंग्रेजों के उसने उनका बुरा नहीं माना
वह खुश रहता है हमारे मॉलों के किनारे पैदल ही मंडुआडीह से दशाश्वमेध तक चलकर
बाबा विश्वनाथ उसके हैं
उसकी गठरी को कोई खतरा नहीं
वह तो घर से निकलता ही है सुमिरन कर
गंगा मैया और महादेव की कृपा हुई तो जरूर लौटेगा
बन्धु - बांधवों को जिमायेगा
लेकिन वह नहीं जानता या उसके लिए इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं
कि आज व्यवस्था बहुत सुदृढ़ हो गयी हैं
वह पहले सा कहीं भी कभी भी किसी राह नहीं चल सकता
आज वह सुराज है जिसका सपना उसके पुरखों ने देखा था
आज वहीं सुराज लाठियों के साथ खड़ा है नगर की हर डगर पर
रूकावटों की बैरीकेडिंग के साथ
आज वह कहीं भी रूककर भौरी - चोखा नहीं लगा सकता
और न हीं कर सकता है आराम देह के थक जाने पर छूछ धूप में तपती सड़क की फुटपाथ पर
क्योंकि आज वह जाग रही है और उसका महकमा नहीं छोड़ेगा कोई अवसर
यह बताने का कि सभ्यता ने कितना विकास कर लिया है यह इक्कीसवीं सदी है
सब कुछ चलता है संविधान सम्मत
हाँ मुआवजों पर हक है उसका पर मरी देह उसके किसी अपने की है
यह साबित करना है उसी को
वह भी हमारी तरह इस देश का नागरिक है
नगर पर उसका भी हक है और उल्लास पर भी
आज उसकी आस्था उसके फाग और 'भाग' पर बाजार का कब्जा है
और हम सोच रहे हैं कैसे लिखी जाए एक प्रेम कविता
अब जबकि वेलेंटाइन-डे बस आ ही गया है
इस खुरदुरी सी सोच के दरवाजे को धकियाता बिल्कुल पास
अप्रासंगिक करता मेरे टेबल पर पड़ी 'डॉ जिवागो' और 'प्राइड एंड प्रीजुडिस' पन्नों को
मेरे मानस से मिटाने की कुचेष्टा के साथ
और मैं सोच रहा हूँ कब आएगा कोई
चे - गवेरा या चारु मजुमदार जलाने उम्मीद की कंदील
मुर्दों के टीले पर !

निबंध

भूमंडलीकरण और साहित्य

रहीम मियाँ
दार्जीलिंग, प. बंगाल

भूमंडलीकरण का व्यापक अर्थ जो भी हो, इसका निहितार्थ स्वार्थ प्रेरित है तथा आम जनता को कंगाली और गरीबी के दलदल में खींच कर पूंजी को विकसित देशों में अधिक से अधिक केन्द्रित करने का परोक्ष माध्यम है। साहित्यकार एवं मानवतावादी विचारक इस षड़यंत्र से वाकिफ हैं और वे इसे बेनकाब करने का प्रयत्न अपनी रचनाओं से करते आ रहे हैं।

साहित्य की अन्तर्दृष्टि मानवतावादी होती है, जो अपनी जातीय अस्मिता की सापेक्षता में एक विश्व की ओर अग्रस होती है। यह दृष्टि हमें कबीर से लेकर मुक्तिबोध-नागार्जुन आदि तक प्राप्त होती है तो दूसरी ओर शैली, शेक्सप्रियर, एजरां पाउंड से लेकर सोल्जेनिस्तीन और पास्टरनाक आदि तक। अर्थात् जब कोई वस्तु मानवीय अस्मिता पर प्रहार करती है तो इसका गतिरोध साहित्य और विचारक ही करते हैं। आज भूमंडलीकरण की अवधारणा ने मानवीय अस्मिता को हानि पहुँचाई है, पूँजी के भूमंडलीकरण ने साम्यवाद की धारणा को समूल उखाड़ फेंका है, मानवीय मूल्यों की धज्जियाँ उड़ा दी है। ऐसे अवमूल्यन की स्थिति को देखकर साहित्य एवं विचारक ही इसके खिलाफ आवाज उठा रहे हैं।

जिस रुप में भूमंडलीकरण आ रहा है वह हमारी जातीय एवं राष्ट्रीय अस्मिता पर करारा प्रहार है। यह सांस्कृतिक संकट है क्योंकि इसकी चपेट में केवल अर्थ और राजनीति ही नहीं आ रहा है वरन् पूरी सांस्कृतिक प्रक्रिया इससे प्रभावित हो रही है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, विश्व सुंदरी प्रतियोगिता, उपभोक्तावाद तथा हिंसा, अवमूल्यन आदि ये जितनी भी शाखाएँ-प्रशाखाएँ दूसरी तथा तीसरी दुनिया के देशों पर जिस तरह अपना प्रभुत्व जमाती जा रही हैं वे प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रुप से भूमंडलीकरण के परिणाम हैं और इसे नजरअंदाज करना एक ज्वलंत यथार्थ से आँख मूँदना है।

लोक साहित्य लोक द्वारा लोक और व्यक्ति के अद्वैत के अर्थ में रखा जाता है। इसमें परस्पराबोध के साथ ही जनता अपनी भागीदारी का साक्ष्य पाता है और उसे स्मृति सम्पन्न भी बनाता है। आज साहित्य में स्मृतिहीनता का कुप्रभाव भूमंडलीकरण के कारण गहरा और व्यापक हो रहा है। स्थानीयता, आदिमगंध, मिथक आदि के तो सीधे विरोध में खड़ा है - भूमंडलीकरण। साहित्य में संवेदना महत्वपूर्ण होती है और भूमंडलीकरण सबसे पहले इस संवेदना को ही नष्ट कर रहा है ताकि अपना पैर जमा सके।

पूँजीवाद और सम्राज्यवाद सभी चीजों को माल में परिणत कर देते हैं चाहे वह आदमी हो या उसकी कला, संस्कृति। इसी रुप में साहित्य का व्यवसायीकरण भी करता रहता है। मार्क्स ने पहले ही कहा था कि पूँजीवादी समाज में कला और साहित्य भी बिकाऊ माल होते हैं। मार्क्स के शब्दों में - 'बुर्जुआ वर्ग ने अब तक जिस-जिस काम को सम्मान और भय मिश्रित आदर के साथ देखा था, उन सबका गौरव उतार कर रख दिया। उसने चिकित्सक, वकील, पुजारी, कवि, वैज्ञानिक सभी को अपने वेतन भोगी मजदूरों में बदल दिया।

प्रायः लेखक अपने समाज के उजड़े हुए और असंतुष्ट होते हैं। दरअसल वे अपनी गहन संवेदनशीलता के कारण भविष्य में बनते-विगड़ते मानवीय रिश्तों को देख पाते हैं। वे उस पतन और उन विकृतियों से मुक्त होना चाहते हैं, जो उन्हें सामाजिक संबंधों के अमानवीयकरण में नजर आता। भूमंउलीकरण का साहित्य पर सबसे घातक असर तो यह है कि लोग साहित्य के प्रति उदासिन हो रहे हैं। टेलिविजन और चैनलों ने लोगों का सारा समय ले लिया है, वही सनसनीखेज, उत्तेजक और सस्ते साहित्य की माँग बढ़ रही है। इसके साथ ही लेखकों के सामने नए संकट खड़े हो रहे हैं। साहित्य की ओर आकर्षक होने की प्रवृति कम होती जा रही है। उपभोक्तावाद लेखक की चेतना पर भी जाने अनजाने प्रभाव डाल रहा है। विज्ञापन, प्रलोभन और प्रचार वाली शक्तियाँ भी उस पर दबाव डालती है। इतना ही नहीं दबाव के कारण हिन्दी के कवि, कहानीकार इसके खिंचाव में आकर टेलिविजन संस्कृति के लिए काम कर रहे हैं। इस चुनौती से बचने के लिए लेखक को आत्मसजगता से काम लेकर साहित्य के सामाजिक सरोकारों के प्रति प्रतिबद्ध होना होगा। साहित्य और कलाकारों के दायित्वबोध की याद दिलाते हुए पुष्पाल सिंह का सही कहना है - 'यह बाजारु संस्कृति का निर्बाध प्रसार अब रुकने की बात नहीं रह गया है, एक प्रकार से यह अप्रतिरोध्य ही हो चला है, इसके प्रभाव को केवल साहित्य और कलाओं के चिंतन द्वारा ही कुछ सम पर लाया जा सकता है।

भूमंडलीकरण के दुष्प्रभाव से हिन्दी साहित्य ही नहीं विश्व के समस्त देशों का साहित्य चिंतित है। कवि भूमंडलीकृत स्थितियों से विचलित होकर अपने बिम्बों, प्रतिकों एवं मिथकों के माध्यम से इसके दुष्प्रभाव का चित्रण कर रहे हैं। भगवत रावत की 'कविता कहते हैं कि दिल्ली की कुछ आबोहवा और' कुँवर नारायण की 'बाजश्रवा के बहाने', एक अन्य आरम्भ', 'जादू नगरी' आदि में महानगरीकरण की टीस व्यक्त है तो उदय प्रकाश की 'घर की दूरी', बैरागी आया है गाँव', 'दिल्ली' आदि कविता में अमीर-गरीब के बीच की बढ़ती खाई का संवेदनात्मक चित्रण है। अनामिका, कात्यायनी, एकांत श्रीवास्तव, निलय उपाध्याय, कुमर अंबुज, मदन कश्यप आदि कवियों ने दलित एवं स्त्री चेतना के साथ ही खत्म होती मानवता की नियति पर कविताएँ की है।

कथा साहित्य में तो भूमंडलीकरण के प्रभाव का विश्लेषण सशक्त रुप में मिलता है। पुष्पाल सिंह का कहना है कि कहानी अपने परिवेश की घटनाओं को अधिक त्वरा और 'तात्कालिक' रुप में ग्रहण करती है, फलतः वैश्वीकरण की प्रक्रिया में अपसंस्कृति का जो प्रसार हो रहा है, उसे कहानी ने बहुत गहराई और विस्तार से विश्लेषित किया है। भूमंडलीकरण के द्वारा लाई गई आर्थिक असमानता, गरीब-गरीब के बीच की बढ़ती खाई, किसानों की आत्महत्याओं का न रुकने वाला सिलसिला, उपभोक्तावाद और बाजारवाद का खुला खेल, पैसे की अनथक दौड़ और आकाशचुम्बी स्वपनों का संसार, सौन्दर्य प्रतियोगिताएँ, विज्ञापन का तिलस्मी लोक और उस सबके बीच छीपती मानवता, श्रेष्ठ मानवीय मूल्य आदि कहानी की चिन्ता में विद्यमान रहे हैं। इस युग में प्रमुखता कमलेश्वर, उदय प्रकाश, मनोहर श्याम जोशी, मृणाल पाण्डे, रमेश उपाध्याय, संजीव, शैवाल, जयनंदन, विष्णु नगर, सुनीता जैन, मनीषा कुलश्रेष्ठ, रणेन्द्र, नीलाक्षी सिंह आदि कहानीकारों ने भूमंडलीकरण की अपसंस्कृति का विरोध अपनी कहानियों के माध्यम से करते आ रहे हैं।

भारतीय संस्कृति ने वर्षों के इतिहास और परम्परा को आत्मसात करते हुए जो जीवन मूल्य विकसित किए, वे जीवन मूल्य व्यवहार में भी परिलक्षित होते हैं। ये जीवनमूल्य एक कल्याणकारी मूल्य पद्धति के तहत हमारे सामने हैं। विश्वबंधुतव, उदारता, मानवीयता, परदुःख कातरता, सहिष्णुता, सबकी मंगल कामना, शालीनता इस कल्याणकारी मूल्य पद्धति के आधार हैं। इस मूल्य पद्धति के केन्द्र में मनुष्य है, किन्तु आज की संस्कृति में मनुष्य की जगह धन को रखा जा रहा है। जीवन मूल्यों के केन्द्र में यदि धन आ जाए तब वहाँ कोई मूल्य नहीं रहता। वहीं से अमानवीयकरण की प्रक्रिया शुरु होती है। यही वजह है कि आज समाज में योग्य वस्तुओं के प्रति ललक, सामाजिक रिश्तों में उदासीनता, सामाजिक अलगाव, भ्रष्टाचार, सामाजिक जीवन में छल कपट, झूठ, शर्म के नाम पर दंगे, हिंसा पनप रही है। भूमंडलीकरण की खुली बाजार व्यवस्था ने पूरे विश्व में बाजारवाद और उपभोक्तावाद का जो संसार रचा उसका शिकार विकासशील देशों का सामान्यजन विशेषकर मध्य वर्ग इतनी बुरी तरह से प्रभावित हुआ कि विद्वानों के लिए यह चिंता का विषय बन गया। इस दौर के साहित्य में इस समस्या का बहुविध चित्रण बार-बार मिलता है। यह एक प्रकार से बाजारवाद और उपभोक्तावाद का प्रतिरोधी स्वर हैं स्थितियों का चित्रण कर उनके प्रति नकारात्मक रुख अख्तियार करते हुए रचनाओं के पात्रों की इस रुप में प्रस्तुति की गई है कि उस सबके प्रति एक वितृष्णा भाव जगे। इन साहित्यिक रचनाओं को पढ़कर यह स्पष्ट होता है कि सामान्य मनुष्य किस प्रकार बाजार और बाजार की शक्तियों का दास बनकर रह गया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में बड़े-बड़े निगम, विचारकों को खरीदकर उनसे कंपनी के विकास के लिए चिन्तन करवाते हैं। ज्ञान, मनन, चिंतन, बहस, संवाद सबका व्यवसायीकरण हो जाता है। साहित्य एवं कला बाजार की वस्तुएँ बन जाती है। अतः पूँजीवाद की हितैषी विचारधारा का भी वैश्वीकरण हो जाता है और यह विचार धारा विज्ञापन के माध्यम से हम पर दिन-रात थोपा जाता है और हमारा चिन्तन भी बैसा ही हो जाता है। जिसे हम स्वतंत्र चिंतन कहते हैं वह केवल कुछ बौद्धिक सनकियों तक सीमित रह जाता है।

भूमंडलीकरण के प्रभाव से भाषा अछुता नहीं रही है। भूमंडलीकरण के तीव्र प्रसार में अंग्रेजी भाषा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसी के बल पर सूचना क्रांति का विस्फोट सम्भव हुआ। अंग्रेजी के माध्यम से ही कम्प्यूटर का भी विकास हुआ। जिस प्रकार अमेरिका पूरे विश्व की संस्कृति को एकल संस्कृति में विकसित कर रहा है, उसी प्रकार भाषा के स्तर पर भी अंग्रेजीकरण की प्रक्रिया भी चल रही है, जिससे अनेक भाषाओं का अस्तित्व संकट में आ गया है। यूनेस्को ने 2008 में विश्व की भाषाओं पर चिन्ता व्यक्त करते हुए एक रिपोर्ट पेश किया था जिसके आधार पर यह बात सामने आई थी कि पूरे भूमंडल में 6780 भाषाएँ बोली जाती हैं और इनमें 6432 भाषाएँ तो ऐसी हैं जिनके बोलने वालों की संख्या 2.50 करोड़ है। 585 करोड़ ऐसे लोग हैं जो 268 भाषाएँ बोलते हैं किन्तु 21वीं शदी के अंत तक प्रौधोगिकी और तकनीकि उन्नति तथा सूचना क्रांति के विभिन्न उपकरण इनमें से आधे से अधिक भाषाओं का अस्तित्व समाप्त कर देंगें। इस समस्या पर विचार करते हुए पुष्पाल सिंह जी अपनी पुस्तक में लिखते हैं - 'जब भूमंडल में इंटरनेट का प्रसार-उपयोग अधिक होगा तो सवतः ही उन जन समाजों में अंग्रेजी का प्रयोग और वर्चस्व बढ़ता चला जाएगा। इससे मातृभाषाओं और बोलियों की विलुप्ति प्रक्रिया और भी तेज होती चली जाएगी, जो भाषाएँ बच जाऐंगी, उनका और अधिक आंग्लीकरण हो जाएगी। हिन्दी भाषा के संदर्भ में देखा जाय तो भूमण्डलीकरण ने हिन्दी की शक्ति को खूब पहचाना है। हिन्दी आज बाजार की प्रिय भाषा बन गई है, सूचना तकनीकि में भी धीरे-धीरे हिन्दी का प्रसार हो रहा है। टी.वी. चैनल्स हो या प्रिंट मीडिया सभी हिन्दी भाषा में अपने चैनल्स और अखबारों का ताँता लगा रहे हैं। किन्तु हमें यह देखना है कि बाजार की हिन्दी कैसी हिन्दी है? वैश्वीकरण की प्रक्रिया में हिन्दी का स्वरुप और प्रकृति द्रुत गति से परिवर्तित हो रही है। हिन्दी का नया चरित्र गढ़ा जा रहा है। रोमन में हिन्दी और देवनागरी में अंग्रेजी का फैशन चल पड़ा है। भाषाई शुचिता का प्रश्न बेमानी हो गया है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने हिन्दी की बोलियों और जनभाषाओं को विलुप्ति की ओर अग्रसर किया है।

अतः भूमंडलीकरण के दौर में गम्भीर चुनौती भरे और नये समतावादी मरकजों पर ले जानेवाला उत्कृष्ट साहित्य ही नहीं भाषाएँ भी दुर्घटनाग्रस्त हुई है। दरअसल साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं, लेकिन जीवन के दूसरे सभी क्षेत्रों में उत्कृष्टता दुर्घटनाग्रस्त हुई है, किन्तु यह देखने की बात है कि दुर्घटनाग्रस्त होती हुई उत्कृष्टता की माँग अभी भी पाठकों के मन में क्या है? यह कहना उपभोक्तावादियों को सम्मान देना ही होगा कि उनकी कमजोर व्यापारी इच्छाएँ, हिंसा और सेक्स ही साहित्य का आकर्षण बन गया है।

कविता

आदमी

डॉ. अनुज प्रभात
फारबिसगंज, अररिया, बिहार

आदमी -
कितना कुछ सोचता है
कितना कुछ
उम्मीदों को पालता है
फिर कहीं
किसी काम में हाथ डालता है

आदमी -
ढूंढता है, तलाशता है
एक ठौर को
जहां उसे सांत्वना मिल सके
एक छॉव को
जहॉ जीवन के उमस को
शीतलता मिल सके
एक ऐसा कोई हो
जिसे अपना कह सके।

आदमी -
पिघलना चाहता है
किसी के प्रेम के उदबोधन में
किसी रोमांचक पल के
अंकपाश में
जहॉ वह भुला सके
जीवन की वेदनाओं को
और पा सके - एक सुख
असीम प्रेम का सुख।

कितना कुछ
चाहता है आदमी
कितना कुछ करता है आदमी
किन्तु,
कितना कुछ चाहने
और करने के बीच
खड़ा हो जाता है
जो दीवार बनकर
वह भी होता है
आदमी ही।
आदमी -
बदलता है विचार
बदलता है मन
और बदलता है
अपना रास्ता ।

आदमी -
छोड़ता है सीधे रास्ते को
अपनी महत्वकांक्षा के लिए
और वह अपनाता है
शॉर्टकट -
अपने आपको
बुलन्दी पर देखने के लिए
किन्तु यह शॉर्टकट भी
बनता है आदमी से
आदमियत खत्म कर
रह जाता है रिश्ता -
खोखला
फिर आदमी से
आदमी का ।

बस आदमी -
आदमी होता है
इंसान नहीं होता
और तब -
लहू-लुहान जो होता है
वह होता है - आदमी
आदमी का -
अपना आदमी ।

कहानी

दादी आई थीं

डॉ. मीरा झा
आकाशवाणी, भागलपुर

रोज की तरह चमकता-दमकता राणी सती मंदिर। मारवाड़ी महिलाओं का झुंड। आज फिर दादी आई थीं तभी तो मंदिर में इतनी भीड़ थी। अपने घर से तैयार होकर मंजु कालेज के लिए निकली ही थी कि सामने मंदिर के बरामदे में जुटी महिलाओं की चिल्लपों ने उसे रोक लिया। यह देखने का लालच न रोक सकी और घुस गई मंदिर के अहाते में। चप्पल खोल कर उसने चारों सीढ़ियाँ पार की और नथ पहने, ओढ़ना डाले कंधे उचकाती महिलाओं की भीड़ को चीरती हुई अंदर धंस गई। एक संभ्रांत परिवार की विधवा बहू ठीक मंदिर के द्वार पर प्रतिमा के ठीक सामने अविष्ट सी पड़ी हुई जाने क्या-क्या बोल रही थी और पूजा करने के लिए पहुंची महिलाओं का एक झुंड उसे घेरे - 'दादी आई ह - दादी आई ह - कह कर फुसफुसा रही थी। एकाध भक्त महिला अरदास में हाथ जोड़े खड़ी थी और एक-दो जनी उस की अवस्था देखकर भक्ति भाव से पंखा झलने में लगी थी। वेचारी पुजारी दीनू महाराज रोज-रोज दादी के आने से परेशान उनके आदेश और फलादेश की प्रतीक्षा में अपने आसन पर निरीह भाव से हाथ जोड़े बैठा था कि आज दादी कौन सी डांट लगाएंगी। ना जाने दादी की सेवा में रोज रोज क्या त्रुटि रह जाती है कि कहने के लिए उन्हें बार बार आना होता है? अब क्या होगा? अब क्या होगा? करीब करीब निगाहों में इसी सवाल के साथ एक दूसरी को देखती महिलाएं और बलि के बकरे की तरह बैठे पुजारी दीनू महाराज - पं. दीन दयाल शर्मा।'

गर्मी और भीड़ के मारे वहां रहना असह्य हो गया था, मंजू तेजी से अपने हाथों का बैग सहेजे सीढ़ियाँ फलांग कर प्रांगण में आई तो देखा चप्पल गायब। बहुत खोजा। ना मिली, अंत में जोर-जोर से कहना शुरू किया, करीब करीब गलियाने की तरफ तो एकाध बुजुर्ग महिलाओं ने बड़े प्यार से गरजते हुए कहा - 'बेटा अभी हल्ला नहीं करते। दादी आई है न?

सिर आई है - 'मंजू ने मन ही मन परिस्थितियों को कोसा और और सोचने लगी कि आखिर बाटा की एकदम नयी चप्पल कौन वापस कराएगा ?कि तभी किसी ने फिर आंख ही आंख से गरजा कि विध्न मत करो।

वह अंदर ही अंदर कडुआहट लिए मंदिर से खाली पांव निकली। सड़क पार कर अपने घर गई और पुरानी चप्पल पहन कर कॉलेज निकल गई। उसका मूड ऑफ हो गया था। पूरे दिन कॉलेज में क्लास करते हुए भी उस के दिमाग में चप्पल जाने का अफसोस बना रहा।

नया नया यह सती मंदिर आज से कोई आठ-एक महीने पहले बना था। कलकत्ते से कोई सेठ आया था बहुत धनी और उदार मना। इस बड़े से गांव में मारवाड़ियों की इतनी बड़ी आबादी और कोई सती मंदिर नहीं। उसे हार्दिक इच्छा हुई कि यहां एक सती मंदिर होना ही चाहिए। लोगों की मीटिंग बुलाई गई और सर्वसम्मति से तय हुआ कि पुराने ठाकुर बाड़ी के अहाते में इतनी जमीन है कि एक छोटा सा सती मंदिर बन सके। फिर क्या था चट पट इटें गिरादी गई, सीमेंट बालू की व्यवस्था हुई और कारीगर मिस्त्री जुट गए। उस जगह पर पुराने अड़हुल वैजंती और जूही के पौधे और बेल साफ करदिए गए। बड़ी धूमधाम से मंदिर की नीव पड़ गई....अत्यंत खुशी की बात थी लेकिन मंजु को थोड़ा सा कष्ट इसलिए था कि आधा से अधिक बचपन इन्ही फूलों को जवर्दस्ती तोड़ते, चोरी से फूल तोड़ते और डांट खाते बीता था। अपने बचपन की एक घटना तो उसे भुलाए नहीं भूलती जब मंदिर में बूढ़े पुजारी थे। थोड़ा उंचा सुनते थे। संभवतः बुढ़ापे की असमर्थता ने उन में झुंझलाहट और क्रोध काफी मात्रा में भर दिया था। वे पहले वैद्यनाथ थे, फिर बिरजू महाराज हुए बाद में उन के उंचा सुनने से उन्हें बहरा-महाराज बना दिया था। उत्पात करते फूल तोड़कर बरबाद करते बच्चों से जब वह नहीं निपट पाते तो परिचित बच्चों को पहचान कर उनके मां बाप का नाम लगा कर गालियां देते। चिल्ला चिल्ला कर उनका गला फाड़ना बच्चों में और आनंद ही पैदा करता... लेकिन चूंकि सामने घर था इसलिए भागने के बाद भी हरसंभव शिकायत का उन्हें मौका मिल ही जाता और डांट खानी पड़ती।

उन दिनों उसका चचेरा भाई आया था। वहीं रखकर पढ़ाने के इरादे से उसके बाबूजी उसे सुदूर देहात से ले आए थे। था तो सात-आठ का साल का बच्चा लेकिन उसकी अनुशासन हीनता, अनगढ़ आदतें और बेहिसाब शैतानी सब की परेशानी का सबब बनी हुई थीं। जो बाकी बच्चे सोच नहीं सकते थे उन्हें बड़ी बेफिक्री और आत्मविश्वास से वह कर गुजरता था। एक बार की बात है सभी भाई बहन गन्ना चूस रहे थे। मां ने अपने-अपने हिस्से का गन्ना तोड़कर अपने तमाम बच्चों में बांट दिया था। घर के ठीक सामने मंदिर का वह दरवाजा था जो कभी कभार ही खुलता था। मुख्य द्वार खुला रहने पर उसे खोलने की नौबत ही नहीं आती थी। उसका वह चचेरा भाई बंटू उसी बंद दरवाजे की उपरवाली सीढ़ी पर बैठ गया गन्ने लेकर। कुछ देर तक चुसे हुए टुकड़े वह बीच सड़क पर फेंकता रहा। उसके कोई दस मिनट बाद जाने क्या हुआ कि भड़ाक से बंद दरवाजा खुला और अंदर से गाली देते हुए बहरा महाराज का रौद्र रूप प्रगट हुआ। इतना होना था कि बंटू उछल कर हाथ में लिए गन्ने को थामे सर पर पैर रख कर भागा। संभवतः वह इस के लिए तैयार था। इधर मंजू और उसके बाकी भाई बहन अपने घर के दरवाजे पर थे। जब बहरा महाराज उस लड़के को नहीं पकड़ पाए तो तुरत कूद कर सड़क के इस पार खड़े बच्चों में से उसके छोटे भाई के कान कसकर उमेठे और भागने वाले की तरफ देखते हुए गालियां देना जारी रखा - 'अरे रामऱ्या, मूंडी टूट्या, राम जाददा, इन रावणा के मारे नाक में दम हो गयो।' और भी जाने क्या क्या? बड़ा हंगामा हुआ। सभी

अकचकाए हुए थे कि आखिर हुआ क्या? रविवार की शाम थी। बाबू जी घर में ही थे आंगन में बैठे चाय पानी कर ही रहे थे कि हल्ला सुनकर बाहर आए। उनको देखना था कि बहरा महाराज गैस से गुब्बारे की तरफ फट पड़े' - थे थारा टाबराण समझावो कोणी के? देक्खो तो के कर्‌या है। (आप अपने बच्चों को समझाते नहीं क्या? देखिये तो क्या किया है?) और वे बड़े आक्रोश से गन्ने की चूसी हुई चिभ्भी को उसके बाबू जी को दिखालने लगे। अब जा कर सबों को कारण समझ में आया कि बात हुई क्या थी। सारे बच्चे खड़े हुए अपने दरवाजे पर गन्ना चूस रहे थे लेकिन बंटू उनके बरामदे वाले दरवाजे पर जा बैठा था। दरवाजे में एक सूराख थी। वह चूसी हुई चिभ्भियों को उन्हीं सूराख के माध्यम से अंदर डालता जा रहा था। अंदर वहीं बरामदे में फूल और तुलसीदल बीनते हुए महाराज जी की नजर जब एक-एक कर अंदर आती हुई चिभ्भियों पर पड़ी कि वह आग बबूला हो उठे। मंजू को आज भी याद है बड़े गुस्से से पुकार कर उन्होंने बुलाया - कहा - 'ए छोरी उठा आणें।' (ए लड़की उसे उठाओ) उसने बाबू जी के डर के मारे वह सब उठाया और लाकर बाहर डाल दिया उस शाम बंटू की पिटाई के साथ-साथ बाकी भाई बहन भी आसानी से नहीं बचे थे। बड़ी जबर्दस्त डांट पड़ी थी।

स्मृतियों के ऐसे ही आधार स्तंभ थे वे कारण जिन्हें हटा कर सती मंदिर की आधार शिला रखी गई थी। आनन-फानन में मंदिर तैयार भी हो गया था। धूमधाम से प्राण प्रतिष्ठा भी कर दी गई थी। उस बड़े भंडारे में प्रसाद भी पाया था। मंदिर की छत पर दहाड़ता हुआ लाउडस्पीकर थोड़ी देर तक भजन और उसके बाद फिल्मी गाने गुंजाता हुआ उसके खपरैल को गुंजारित करता हुआ उस रात कैसी नींद हराम कर गया था पूरे परिवार की। उसे आज भी वह सब भूला नहीं था।

कुछ दिन तक तो पुरूषों महिलाओं का रेला बना रहा सबुह शाम और मंदिर में फलफूल मिठाइयां सोने की नथे चांदी के छत्तर और गोटे की चुनर जैसे चढ़ावे आने लगे। जिन की जितनी मानता थी उनके वैसे ही चढ़ावे। धीरे-धीरे पुरूषों की आवाज ही थोड़ी कम हुई लेकिन महिलाएँ बाकायदा भक्ति भाव से अब भी आती हैं।

वह भी जाती नियमित, सुबह नहीं तो शाम। मां पूछती कि पहले तो लाख कहने के बाद भी मंदिर नहीं जाती थी तुम, लेकिन अब इतनी भक्ति कहां से आ गई तुम में ?

अब वह कैसे उन्हें समझाए कि यह जाना किसी पूजा पाठ के लिए तो था नहीं मात्र मिलने जुलने गप सड़क्का करने और एक दूसरे का पहनावा ओढ़ावा देखने का एक सुन्दर बहाना था महिलाओं के लिए। जिनसे छठे छमाहे कभी कभार ही भेंट होती थी वे अब रोज मिलने लगी थीं। उनकी चर्चा का दायरा सास ननद जेठानी देवरानी से लेकर नए कपड़े गहने, नए पुराने फैशन की चर्चा आलोचना के साथ-साथ बहुत दूर तक होता था।

मंदिर जाने का यह क्रम औरो का जितना भी चला हो उसका नहीं चलपाया। बीच में कुछ महीनों के लिए यह सिलसिला रूका कारण पढ़ाई परीक्षा, बच्चा और ससुराल की नानामुखी गतिविधियाँ लड़कियों को कहां चैन लेने देती हैं? थोड़ा विश्राम मिला। वह पीहर आई। छोटी बहनों ने ढेरों खबरें सहेज रखी थी उसे बताने को, साथ-साथ एक हिदायत भी कि दीदी नई चप्पल पहन कर हरगिज मंदिर नहीं जाना। खूब चोरी होने लगी है।'

बात तो सच है ही। वह क्या नहीं जानती शुरू से ही यह हंगामा उठता आया है 'कुण मेरो चप्पल ले गयो रे? एकदम नई चप्पल थी। फलाणियो ला क देयो थो या फलाणियां से मंगाई थी। (कौन मेरी चप्पल ले गया रे? एक दम नई चप्पल थी। फलाने ने ला दी थी या फलाने से मंगाई थी।) शुरू शुरू में सुन कर लगता कि किनती गलत बात है कि ऐसी जगहों से लोग चोरी कर के जाते हैं। इस घटियां बात की आलोचना भी हुई निंदा भी हुई लेकिन किसी को कुछ कहना नहीं पड़ा। लोगों ने अपना समाधान स्वयं कर लिया खास कर महिलाओं ने तो। अब अक्सर ही उम्दे वस्त्र पहिरावे ओढ़ावे और अच्छे साज श्रृंगार पर निहायत ही फटीचर किस्म की पुरानी चप्पलें देखी जाने लगी। धीरे-धीरे यह हल्ला स्वतः समाप्त हो गया। महिलाओं ने विशेष रूप से ऐसा कर के समाधान की दिशा ढूंढ ली थी.... और कितने आश्चर्य की बात है कि वे चप्पलें चोरी भी नहीं होती थी शायद ले जाने वालों या वालियों ने सत्य को आत्मसात कर लिया था कि अब इस धंधे में कोई फायदा नहीं है। झूठ-झूठ क्यों भगवान के घर में चोरों में नाम लिखाएं?

गरमियों के दिन थे। स्कूल सुबह के हो गए थे अतः छोटे भाई बहनों की व्यस्तता बढ़ गई थी। घर भी व्यस्त था। मां को तो काम से ही फुरसत नहीं मिलती थी।

उस दिन बड़ी तेज-तेज आवाजें आ रही थी। सोचा निकल कर देखूं कि आखिर हो क्या रहा है? कि तभी आवाज आई - 'मंजूड़ी.....ए मंजूड़ी'

अरे मौसी आप? आइये आइये। पड़ोस की जोशन मौसी को आते देख मां चौके से निकल कर तौलिये से हाथ पौंछती हुई पास आ बैठी। हंसती हुई बोली - 'हांफ रही हो बहन क्या बात है?

'अरी जीजी जमाना खराब हो गया है। इन मरणजोगियों को भगवान का भी डर नहीं लगता। रोज नाटक कर के बैठ जाती हैं। जाने क्या दिखाना चाहती हैं? वह बोल कम रही थी स्वगत भाषण ज्यादा कर रही थीं। मंजू! मौसी को चाय पिला। कह कर फिर उनकी तरफ मुखातिब होकर बोली क्यों आज क्या हुआ?''

'हो णो के ह.....आज इब राधिया की बीणनी पर दादी आई थी।' (होना क्या है? आज अभी राधे लाल की पत्नी पर दादी आई थी)

'फिर'

'फिर' के? दीनू महाराज को खूब डांट लगाई कि आप मेरी पूजा ठीक से नहीं करो हो या कमी रहगी वा कमी रहेगी में श्राप दे देस्यूं। मेरी शक्ति अपार है। (फिर क्या? दीनू महाराज को खूब डांट लगाई कि आप मेरी सेवा पूजा अच्छी तरह नहीं करते यह त्रुटि रह जाती है वह त्रुटि रह जाती है मैं श्राप दे दूंगी मेरी शक्ति अपार है)

'बिचारो पुजारी। हाथ पांव जोड़तो ही रह गयो।' इस बीच वह चाय ले आई। मां बोल रही थी - 'यह क्या मखौल बना दिया है इन लोगों ने?'

'लोगों ने नई जिज्जी, लुगाइयों ने तमाशा बना रखा है। येई साबित करना चाहती है कि सब से बड़ी भक्तन वही हैं। अपने दबंग व्यक्तित्व और बेरोक टोक जुबान से मुहल्ले को गुंजायमान करने वाली जोशन मौसी की बोलती भी बंद थी इन औरतों के आगे। वे सोच भी नहीं पाती कि कहीं सती दादी के आगे अतना नाटक हो सकता है क्या? और ये दो दिन की छोरियां? जिन्हें सजने संवरने पहनने ओढ़ने और मौज मजा करने से ही फुरसत नहीं मिलती उन पर जाने तो कैसे दादी आ जाती है। देखूं कब तक देखना है ये नाटक?

बात आई गई भी नहीं हुई थी। यह चर्चाऐं अक्सर हवाओं में तैरा करती थी। अत्यधिक धर्मभीरू लोग भी अब खुलकर आपतियां जताते नजर आते थे कि एक और घटना घटी। कस्वाई माहौल मारवाड़ियों, बनियों, बाह्मणों का मिला जुला परिवेश, दिन भर घर से न निकलने वाली महिलाओं का सम्मिलन स्थल यह मंदिर हर संध्या की तरह आज भी चहक रहा था। ठाकुर जी की पूजा आरती के बाद राणी सती दादी की पूजा आरती हो रही थी। आरती के स्वर अत्यंत मधुर हो कर गूंज रहे थे - 'माई ए थारी जोत सवाई ए...कोई बैठी सकल जहान, पुजे बालकियां री माई ए , पुजे टाबरियां री माई ए.... मैं भी थारी दास भवानी करूं तेरी मनुहार, सती ए थारी जोत....सवाई....ए....कि अचानक बीच में से ताली पीटने की आवाज आई....उसके बाद बीच में उछल कूद कर नाचने और घूम-घूमरे घूमने की मुद्रा में किसी के आते ही एक महिला ने अन्यों को पीछे लगभग धकेलते हुए जगह बनाई। औरतों में कानाफूसी शुरू हो गई - 'दादी आई हैं दादी आई है। मंजू इसी दृष्य को देखने बहुत दिनों से बेताब थी कि कैसे दादी आती हैं किसी पर? देखा सुलोचना बाई थी। एक बड़े पैसे वाले घर की बड़ी बेटी। कल ही माय के आई है। सुख सम्पन्नता तो जैसे छलकती थी उनकी देह से। उन्नत ललाट, भरापूर चेहरा उत्तम परिधान से सजी स्थूल काया और उपर से सच्चे मोती का जेवर।

वाह! कितना अभूतपूर्व दृश्य था? मजा आ गया यह सोच कर नहीं कि दादी आई है बल्कि यह देख कर कि स्थूल काया से उछलते कूदते जो सांस की गति बढ़ी थी उस से छाती छौंकनी की तरह चल रही थी। अत्यंत सुन्दर गोरा चेहरा और लाल हो गया था उपर से नथ....उन्नत नासिका के उपर बड़ी सी लाल बिन्दी.....लेकिन अचानक उनकी नाचने की गति थम गई वे वहीं धम्म से बैठ गई और झूमने लगीं। बहुत देर तक करबद्ध मुद्रा में रही, आंखे बंद थीं फिर जाने कैसे अधखुली आखों से रोली के पात्र में से रोली उठाई अपनी मां को जो सामने बैठी थी उन्हें टीका काढ़ा हाथ में फूल और प्रसाद दिए, तब तक आगे उनकी बहन आ गई उसे भी टीका लगा कर प्रसाद दिए। मंजू के लिए यह अभूतपूर्व अवसर था। वह इसी इन्तजार में हाथ बढ़ाए हुए थी कि उसे भी दादी का प्रसाद मिल जाए.....लेकिन सब व्यर्थ गया। सुलोचना बाई आचमनी और प्रसाद लेकर सीधी उठीं और नजरें झुकाए-झुकाए ही मंदिर से उतर कर चप्पल पहनी और सीधी चल पड़ी। मां बहन उनके साथ-साथ थीं। यह देख कर उसे बड़ी निराशा हुई। सच तो यह कि मंजु को जोशन मौसी के कहने का अर्थ अब समझ में आने लगा था। राणी सती दादी जिस पर आती हैं वह महिला सिर्फ अपने ही रिश्तेदारों को कैसे पहचानती होती है? सब वकवास सब झूठ. ...और एडवांस सभ्य कही जानेवाली महिलाओं के बीच महिलाओं द्वारा किया जाने वाला यह ढोंग....रोज रोज तो नहीं चलेगा....और ज्यादा दिन भी नहीं चलेगा।

मंजु जब मंदिर से निकली तो उसके दिमाग में आरती की धुन तरो ताजा थी - सती ए थारी जोत सवाई ए.....

पार्टनरशिप

(व्यंग्य)

रामावतार राही
संस्थापक, बगुला मंच, भागलपुर

एक भिखारी ने
अपनी लड़की का व्याह
बड़े ही धूम-धाम से रचाया
अपने फुटपाथी आवास को
जंगल के फूल पत्तियों से
जी भर सजाया।
दहेज प्रथा को कायम रखते हुए
अपनी औकात से भी
बढ़-चढ़ कर दहेज दिया।
समाज के बनाये गये नियमों की जड़ों को
जड़ से मजबूत किया।
दहेज में,
अनगिनत मिट्टी के पत्तनों के साथ
दामाद की रोजी-रोटी के लिये
एक अल्युमुनियम का
कटोरा भी दिया।
फिर भी दामाद ने
अपना दामादी रंग दिखाया।
बेहिचक ससुर के पास आया
कुछ झेंपा कुछ शरमाया।
बोला,
पिताजी मुझ बेरोजगार को आपने अपनाया है
अपना दामाद, अपने बेटी का पति बनाया है।
कंगला युनियन के महामंत्री होने के नाते
कृपया एक नेक काम और कर दीजिये।
मुझे शहर के किसी चौराहे पर
भीख मांगने की जगह दिला दीजिये।
या नहीं तो
जहाँ आप भीख मांगने जाते हैं।
वहीं हमें पार्टनरशिप में रख लीजिये।

कहानी

गद्दार

उमाकांत भारती
भागलपुर, बिहार

बघवा जंगल स्थित बाघ के नाम से प्रख्यात खूँखार दस्यु सरदार सलीम गिरफ्तार कर लिया गया था। वह हत्या, लूटपाट और अपहरण के सैकड़ों मामलों का नामजद अभियुक्त था। प्रदेश के पुलिस महानिदेशक साहब ने दूरभाष पर मुझे बधाई देते हुए कहा - शाबास मिस्टर गिरिजा नंदन ! हार्दिक बधाई।... लेकिन एक बात समझ में नहीं आई... इस अभियान में पुलिस इन्सपेक्टर बमबम सिंह क्या सचमुच ही शहीद हुए हैं? अगर शहीद हुए हों, तो हम उन्हें मरणोंपरांत 'पुलिस मेडल' देंगे। छानबीन कर मुझे खबर करें।

इन्सपेक्टर बमबम सिंह का शव कई टुकड़ों में विभक्त था। उसका कोई भी अंग समग्र नहीं बचा था। तेज धारदार हथियार से उसे काटा गया था। उसके खंडित अंग के टुकड़े सलीम के घर से चादर में बांधकर गठरी के रूप में थाना लाया गया था।

मुझे जानकारी मिली थी कि बमबम सिंह और सलीम में काफी मधुर संबंध था। इसलिए मैंने बमबम सिंह के पीछे अपने गुप्तचर लगा दिए थे। कहा था - सलीम से मिलने बमबम सिंह कभी न कभी अवश्य जाएगा उसी समय हम छापा मारकर उसे गिरफ्तार कर लेंगे। योजना सफल हो गई थी, लेकिन हम सफलता का जश्न नहीं मना सके; क्योंकि बमबम सिंह की लाश मेरे सामने पड़ी थी। सलीम ने उसे अपने घर में कत्ल किया था।

- उसकी हत्या तुमने क्यों की ? दोस्ती घृणा में कैसे बदल गयी? अचानक तुमदोनों के संबंध में इतनी खटास कैसे आ गयी?

- एस.पी. साहब ! आपके प्रश्न का जवाब मैं नहीं दे पाऊँगा। हाँ ! एक बात कहना चाहता हूँ - मैं चाहता, तो बधवा जंगल में आपको भी खलास कर देता।... परसाल जब आप मेरा पीछा करते हुए जंगल में घुस गए थे... कुछ याद आया आपको!

हाँ ! याद है मुझे ! रहस्य - रोमांच से भरपूर वह अभियान मैं कभी भी भूल नहीं सकता।... उस दिन, मैं इसी थाने का निरीक्षण कर रहा था। उसी दरम्यान थाने के बगलगीर गाँव की एक प्रौढ़ औरत रोते-बिलखते हुए मेरे पास आई। उसके एकलौते बेटे लक्षण का अपहरण सलीम ने फिरौती के लिए कर लिया था। पाँच लाख रुपये दो, नहीं तो बेटे का मरा मुँह देखना।

- क्या नाम था उस औरत का?

- सर ! केस-डायरी में नाम है। देखकर तुरंत बलाता हूँ।

कनीय सब - इन्सपेक्टर श्रीनाथ ने कहा।

- कमली ! उसके पुत्र का मैंने अपहरण किया था।

- सर ! सलीम सच कह रहा है। केस-डायरी में फरियादी का यही नाम है।

- एस.पी. साहब ! सलीम से पूछिए न ! मेरा बेटा लक्षण कहाँ है ?

थाना - परिसर में एकत्र हजारों की उस भीड़ से एक वृद्धा ने चिल्लाकर कहा। वह लाठी टेकते हुए मेरे पास आने का यत्न कर रही थी, लेकिन सिपाहियों ने उसे आगे नहीं बढ़ने दिया। यह मेरा ही आदेश था - बिना अनुमति अंदर कोई नहीं आए। जाँच-कार्य में बाधा पहुँचेगी।

- सर ! मैं कमली ! लक्षण की माँ !

मैंने उसे अपने पास बुलाया।

एक साल पहले की उस कमली और इस कमली में काफी बदलाव आ गया था। उसकी कमर काफी झुक गई थी। बेटे के वियोग में शारीरिक और मानसिक रूप से पूरी तरह टूट गई थी वह !

- सलीम ! फिरौती लेने के बाद भी तुमने लक्षण को क्यों नहीं छोड़ा? कहाँ है वह !

उसने उसे झकझोरते हुए कहा। वह स्वयं कांप रही थी। कुछ बुदबुदा भी रही थी। स्वर अस्पष्ट थे, लेकिन उसकी आँखों से झड़ते आँसू की व्यथा-गाथा एक माँ का हृदय ही समझ सकता था - पाषाण-हृदय डाकू नहीं। काश ! उस दिन मैं लक्षण को मुक्त कराने में सफल हो जाता, तो वह असमय ही इतनी बूढ़ी नहीं होती।

...उस दिन मैं उसे छुड़ाने के लिए सलीम का पीछा करते-करते बघवा जंगल के बीहड़ में काफी अंदर घुस गया था। जंगल शुरू होते ही हमें पुलिस-जीप से उतरना पड़ा था; क्योंकि उबड़-खाबड़ उस घनेरे जंगल में गाड़ी ले जाना मुमकिन नहीं था।

मेरे साथ पाँच सशस्त्र जवान थे। तीन जिला बल के जवान, चौथा थाना प्रभारी इन्सपेक्टर बमबम सिंह और पाँचवा, मेरा अंग-रक्षक हवलदार मुरारी! मेरे पास भी मेरा सर्विस रिवाल्वर था। हमारे पास पर्याप्त मात्रा में गोलियाँ भी थीं।... दूसरी तरफ हमारे दुश्मनों की संख्या हमसे दुगुनी थी और वे वहाँ के चप्पे-चप्पे से वाकिफ थे। इसलिए हमें हमेशा सावधान रहना चाहिए। मैंने अपने मातहतों से कहा।

चारों तरफ लंबे-लंबे घने पेड़, झाड़ियाँ और हमसे भी लंबे-लंबे जंगली घास। कहीं-कहीं बड़ी-बड़ी चट्टाने भी।

...हठात् जोरदार धमाके की एक आवाज हुई। राइफल से दागी गई गोली की आवाज थी। साथ ही मानव-कंठ की दर्दनाक चीत्कार भी गूंजी थी। क्या लक्षण को गोली मार दी गई? इस आशंका से दिल दहल गया था।

जंगली पशु भी घबड़ाकर इधर-उधर भागने लगे। बाघ, बनैला सूअर, लकड़बग्घा, भालू और हिरण हमारे बिल्कुल पास से गुजर गए। पेड़ों पर बैठे बंदर भी खों-खों करते हुए उछल-कूद करने लगे। शांत जंगल अचानक जग गया था। बाघ की गर्जन सुनकर मैं भी डर गया। बाघ हमारे आस-पास ही कहीं था। डरो नहीं, बाघ इधर आए, तो उसे गोलियों से भून देना। मैंने जवानों से कहा।

धमाके की दिशा में एक झोपड़ी दिखायी दी। हमसे करीब दो सौ मीटर की दूरी पर।

- इन्सपेक्टर ! आप तीन जवानों को लेकर झोपड़ी के पीछे पहुँचिए - सभी लोग 'क्रोलिंग' करते हुए जाँए। मैं सामने से हमला करूँगा। अगर कोई भी पीछे से भागने की कोशिश करे, तो गोली मार देना।

मैं भी रेंगते हुए आगे बढ़ा। मेरे पीछे मुरारी था। पहाड़ी बिच्छू, जहरीले साँप और कई किस्म के कीड़े-मकोड़े हमारे इर्द-गिर्द विचरण कर रहे थे। हमें डर भी लग रहा था। फिर भी हम आगे ही बढ़ते रहे। थोड़ी देर में हम झोपड़ी के पास पहुँच चुके थे। जवान भी पहुँच चुके थे। उनलोगों के पहुँचने का सिग्नल मुझे मिल गया था। हम सामने से हमला करने ही वाले थे कि झोपड़ी के पीछे गोलियाँ चलने लगीं।... आह! हाय! मरा...की चीत्कार गूंज उठी। समझ में नहीं आया कि कौन किस पर गोलियाँ चला रहा है? योजना के मुताबिक सामने से पहले हमें हमला करना था। इसलिए मुझे लगा था कि मुठभेड़ प्रारंभ हो गई। तब हम भी ताबड़तोड़ गोलियाँ चलाते हुए झोपड़ी में घुसे।

अंदर एक भी डाकू नहीं थे। वहां लक्षण भी नहीं था। झोपड़ी में खाने-पीने की थोड़ी-सी सामग्रियाँ थीं। कुछेक बर्तन-बासन। गैस-चूल्हा और गैस-सिलेंडर भी वहां था।

- सर! कोने में खून के धब्बे... ताजे खून के। खून भी गर्म है।

मुरारी ने मुझे खून के धब्बे दिखलाए। झोपड़ी के पिछले दरवाजे की ओर भी खून के धब्बे दिखलायी पड़े। तब मैंने झोपड़ी के बाहर निकलकर इधर-उधर देखा। इन्सपेक्टर और जवान कहीं भी नजर नहीं आए। तब मुरारी ने इन्सपेक्टर को आवाज लगायी।

- सर ! मैं यहाँ हूँ... गड्ढे में।

धीरे-धीरे वह उसमें से बाहर निकला।

- इन्सपेक्टर ! जवान लोग कहां हैं?

- सर ! किस मुँह से कहूँ, कहा नहीं जाता। काश! मैं उनलोगों को बचा पाता।

छाती दहल गई। क्षणभर के आँखों के आगे अँधेरा-सा छा गया था। समय ठहर गया था जैसे। तीनों जवानों का निर्जीव शरीर थोड़ी दूर पर पड़ा हुआ था। गोलियाँ उनलोगों के पीठ पर लगी थीं। क्यों? इसका जवाब इन्सपेक्टर ने नहीं दिया।

- सर ! जवानों के शस्त्र भी गायब हैं।

मुरारी ने कहा।

हमने राइफल और गोलियों की तलाश की, लेकिन एक भी राइफल नहीं मिली।

- सर ! डाकूओं ने शस्त्र लूट लिया। वेलोग लक्षण को भी ले भागे। मैं कुछ भी नहीं कर पाया। करता भी क्या? अचानक हमपर गोलियाँ चलने लगी थीं। जवाबी कार्रवाई का हमें मौका ही नहीं मिला।...मैं छिप गया था; नहीं तो मैं भी मारा जाता।

उसकी बातों में मक्कारी की बू आ रही थी। फिर भी मैं चुप ही रहा; क्योंकि मेरे पास कोई ठोस प्रमाण नहीं थे।

- झोपड़ी में खून के धब्बे किसके थे।

- लक्षण के खून के।

सलीम ने जवाब दिया। मुझे इसी बात का अंदेशा हुआ था।

- एस.पी. साहब ! मैंने उसे घायल किया था सिर्फ ! वह भागने की कोशिश कर रहा था। इसीलिए।

- सलीम ! मेरा बेटा जिंदा है न! उसे वापस कर दे।

वह उसके पैरों पर झुक गई। सलीम आकाश की ओर देखने लगा। गोया कमली का बेटा ऊपर हो। मुझे इसी बात की आशंका थी।

- उसे मारना ही था, तो झोपड़ी से लेकर उसे भागे ही क्यों?

- उसे बमबम सिंह ने मार दिया।

सुनते ही कमली मूर्छित हो गई।

रक्षक भक्षक कैसे हो गया? मुझे उसकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ।

- क्योंकि लक्षण ने उसका असली चेहरा देख लिया था।

जवानों की हत्या का वह साक्षी था। इन्सपेक्टर को भय था - मुक्त होने पर वह उसकी पोल खोल सकता है।

सलीम की आँखों में सच्चाई की ज्वाला थी।

- बधवा-जंगल में उस दिन आप मेरे निशाने पर थे - मैं आपका काम तमाम कर सकता था।

- फिर तुमने मुझे मारा क्यों नहीं? आप से मेरी कोई दुश्मनी नहीं थी। वहाँ आप अपना फर्ज पूरा कर रहे थे। इसीलिए मैंने आपको नहीं मारा, लेकिन अगर मेरी जान पर बन आती, तो जान भी ले लेता।

उस दिन हमारे वे तीनों जवान भी वहाँ अपना फर्ज निभा रहे थे। उनलोगों ने झोपड़ी की घेराबंदी की थी सिर्फ। लेकिन उनलोगों ने तुमलोगों पर एक भी गोली नहीं चलायी थी, फिर तुमने उन तीनों की हत्या क्यों की? फर्ज का अलग-अलग मापदंड क्यों? क्या इसका कोई जवाब है?

सलीम काफी देर तक ठठाकर हँसता रहा। हँसी रूकने पर उसने शांत स्वर में कहा - ''कितने भोले हैं आप! आपकी मति मारी गई है क्या? मुझे आपकी योग्यता पर हंसी आती है। खैर! जाने दीजिए। मैं ही बतलाता हूँ उस दिन की सच्चाई। उन तीनों की हत्या बमबम सिंह ने की थी। हमें निष्कंटक फरार हो जाने के लिए।''

उसकी बातें सच क्यों मान लूँ? मैं क्या इतना बड़ा मूर्ख हूँ? तब मैंने तर्क किया - ''तुमलोगों को झोपड़ी से फरार होने के लिए बमबम ने जवानों की हत्या की थी, अगर इस बात को सच मान ली जाए, तो अपने इतने बड़े मददगार की बर्बरतापूर्वक हत्या क्या कोई कर सकता है? वह तो तुम्हारा परम मित्र था ना।''

मेरी बातें सुनते ही वह अत्यधिक क्रोधित हो गया था - ''मत कहिए उसे मेरा मित्र! आस्तीन का साँप था वह! मैं उसे दूध पिलाता था - प्रत्येक महीने उसे लाखो रूपए देता था - उसकी गद्दारी की कीमत। कभी स्वयं अपने हाथों से और कभी अपनी घरवाली के हाथों से। मेरी बीबी उसे भाई जान कहती थी, लेकिन उस कमीने ने उसकी इज्जत तार-तार कर दी। इसीलिए मैंने उसे जिंदा काट डाला।''

...सच कहूँ - उसकी हत्या से मुझे तनिक भी गम नहीं हुआ था।

कविता

सवाल-दर-सवाल

डॉ. चन्द्रेश
भागलपुर, बिहार

कितना अच्छा होता
यदि भूखा आदमी
भूख के बारे में नहीं सोचता
लेकिन ऐसा नहीं होता

भूखा आदमी
सबसे पहले
अपने आप से करता है सवाल
देखते देखते कहां गायब हो गयी
उसके हिस्से की रोटी
वह सोचता है
कौन सा है यह जादुई खेल
कि अन्न बिना हर रोज
मर रहे हैं लोग
गोदामों में सड़ रहा है अनाज
बढ़ रहा है अन्न भंडार!
स्वर्ण भंडार!

बार-बार हो रही हैं घोषणाएं :
आप अपने बारे में नहीं
देश के बारे में सोचें
कोशिश करें
कम खाकर
अच्छा महसूस करें
भूखे आदमी से पूछा जा रहा है
चांद के बारे में
क्या है उसकी राय
आदमी की कीमत पर
चांद पर उतरने की हो रही है तैयारी
अब पुराने दिनों की बात है
भूख बेरोजगारी लाचारी
बार-बार कहा जा रहा है
सुनहरे कल के लिए
कुर्बानी देने का
इससे बढ़िया समय कभी नहीं आएगा

हाशिए पर खड़े लोगों
आप थोड़ा और खिसक जाएं
उनके लिए जगह बनाएं
जिनकी देश को अभी है
सख्त जरूत
बाकी लोगों के लिए
एक ही मंत्र है :
मुश्किल दिनों में भी
अच्छा महसूस करें..

शब्द : दो कविताएँ

डॉ. अचल भारती
बाँका, बिहार

विवेच्य बिम्ब एक

अकेला शब्द!
निहत्था होता है
उसे मारो मत!
किसी गहरी खाई में भी
मत फेंको उसे!
गिराओ भी नहीं उसे
किसी पहाड़ की चोटी से,
छितराओ भी नहीं उसे
किसी समन्दर की छाती पर!
शब्द का समझो भी अर्थ!
अर्थ की परिधि में
धिरा होता है शब्द!
अकेला शब्द!
निहत्था होता है
उसे मारो मत!
शब्द-हिंसा,
लोखों-करोड़ों को
करता है निस्तेज!
वक्त की अंगुलियों का दर्द
बन जाता है सुदर्शन!
काल हो जाता है विकराल!
इतिहास कहाँ पर पाता है
पुनजीर्वित?
किसी शब्द को!
हाँ! अकेला शब्द
निहत्था होता है
उसे मारो मत!

विवेच्य बिम्ब दो

खामखयाली वक्त के सिराहने
बेकार पड़ा शब्द
मरा रह जाता है अंत तक
खुले आकाश में
शब्दों की कारिगरी
एक चुनौती है
सफल इतिहास के मुहाने
हर शब्द को होता है
अपना एक दीर्ध अर्थ-फलक
वह तल, अतल, भँवर में भी
बढ़ने को रहता है आतुर
वहाँ शब्दों के अस्तित्व को
नहीं होता कोई खतरा
अपनी तरफ से
उसका अस्तित्व मिटता है तब,
जब चूक जाती है
रचनाकार की कलम-कूँची
शायद वहीं
शब्द-फलक रह जाता है छोटा
और दे जाता है वह / अर्थ धुन्ध!
बुझा-बुझा / अटपटा / अजीर्ण सा
यानि
इस्तेमाल होते / छेड़ छाड़ होते
शब्दों से
हरगिज न ना पो,
वक्त की गहराई को,
निम्न! गिरते दृष्टि बोध से
आँको न समय की ऊँचाई को,
अपने-आप में शब्द होते हैं 'पूर्ण'
अधकचरी समझ से परे
व्यापक अणु-कण की तरह

समीक्षा

शब्द, सृजन और संवेदना

'मन को दो भीगने' (गीत संग्रह)

उत्तम पीयूष
पथलचपरी, मधुपुर, झारखण्ड

कौन चाहता है धूप रोकना कुछ तो हैं तो लट्ठ लेकर पिल पड़ते हैं, इंसानियत, करूणा वैगेरह जैसे शब्द क्या छज्जे पर पड़े ब्लैक एंड ह्वाइट, पोर्टेबल टी. वी. हैं जिंनकी उपयोगिता खत्म हो गयी है! अभी-अभी देवघर की माटी के सरस्वती पुत्र प्रो. तारा चरण खवाड़े का गीत संग्रह छपकर आया है 'मन को दो भीगने' पचहत्तर बच्छर छूने को तैयार प्रो. खवाड़े ने मरूथल-सा शुष्क, बेजान परिवेश देखा है शायद कि कैसे साहित्य की आरती से साहित्य का सुवास कपूर की तरह उड़ गया कि कैसे शब्द अकेले रह गए, संवेदनाएं अकेली रह गयीं, वे अकेले रह गए, हम सब अकेले-अकेले, अलग-थलग, गरचे लोगों की भीड़ है, शब्दों का बाजा है पर ढेर तमाशा है, जो हृदय, जो सीना निश्चल हंसता-रोता था - ठीक जैसा मन करे वैसा व्यक्त करता था - वहाँ अब है क्या! मन कहां है, आदमी इतना कांशस क्यों है, हमेशा चलता भागता, ट्रैफिक की लाल, हरी, पीली बत्तियों पर मानो टिका हुआ, क्या यह 'नया डेज़र्ट' है, नया रेगिस्तान!

ऐसे में तारा बाबू के गीत पढ़े जाएं तो बहुत अंदर से एक पुकार आती है, प्रेम को, प्रकृति को, धुप को, चांदनी को, हरसिंगार, सावन को बचाने की पुकार, जीवन की कथित व्यवस्थाएं जब संवेदना की दुनिया उजाड़ती है तब जो बेचैनी होती है वह तारा बाबू में फूटती है, बहती, उभगती भावनाएं डैम का पानी नहीं, छोड़ो उसे, वे कहते हैं -

'धारा को मत रोको, बहने दो,
मुझको तुम मत टोको, कहने दो

शायद लंबे समय तक क्लास-कमरों में 'रश्मिरथी' पढ़ाने वाले तारा बाबू के अंदर एक कर्ण साबुत था..... तारा बाबू के गीतों में पंथ निहारते, पथराये जीवन और पीड़ा की अकुलाहट की दासतां सम्हाले एक शख्स गुजरता है। एक रीतापन, खालीपन फैला है, जैसे कि स्टेशन पर एक शख्स किसी के इंतजार में चुपचाप, तन्हा खड़ा है। जिन्दगी भर साहित्य-आखर बांटने-बांचने वाले प्रोफेसर का डेज़र्ट गीतों के बादल से भींगता है, कुछ लोग ताराबाबू को 'वैयाकरण', विद्वान बैगरैह कहते हैं जो कि वे हैं और होंगे, पर मन को दो भींगने का गीतकार जैसे एक फासे चातक की उत्कट पुकार है जो सारे बंधनों से मुक्ति चाहता है, स्वाति नक्षत्र और खुद के बीच और कोई नहीं, वे खुद रहते हैं - जीवन में कुछ कमी रह गयी। मेरे मन का धाव हरा है।

जंजीरें बांधती निराशा। मैं सूने पतझड़-सा झर-झर झाता हूँ। अलग-अलग पंक्तियाँ होकर भी ये पुराना पता ही बताती है, इच्छा हुआ बहुत अच्छा हुआ कि ताराबाबू विद्वान भर नहीं रहे, गीतकार हुए वरना मन कांप जाता है यह सोचकर कि तब वे क्या होते वे कहते हैं -

''दिवस के मोड़े पर सुनसान में सूखा अकेला पेड़ सा मैं''

अपने आचार्भत्व से, अपने विद्वत व्यक्तित्व से बाहर निकलकर तारा बाबू मुक्त हैं और वही वे चाहते हैं शायद, शब्दों के बैंड बाजों से दूर उन्हें कुदरत पसंद है, धार पसंद है, अपनत्व पसंद है, वे सर से पांव तक स्नेह से भरे हैं शायद इसीलिए विगत वर्षों से निरंतर वे अपना स्नेह सबों पर उन्मुक्त खरच रहे हैं।

देवघर तारा बाबू के नये संग्रह 'मन को दो भींगने' से गुजरकर अपनी-अपनी दुनिया के चांद-सूरज, पंक्षी पनघट, बादल, खुशबू के अहसासों में भींग सकता है, वे अभी और कहेंगे - स्वागत है वे खुद रहते हैं -

''जरा ठहरो, अभी कुछ बात बाकी है,
जरा ठहरों, अभी तो रात बाकी है।''

''गा न पाया गान जी भर''

(स्व० रवीन्द्र रवि)

(प्रो० डॉ० रवीन्द्र नाथ सिंह 'रवि' का जन्म 1 मार्च 1944 को नौवागढ़ी मुंगेर में हुआ था। बिहार कृषि महाविद्यालय सबौर में वरीय प्राध्यापक के पद पर थे। 40 वर्षों से कविता और गजल गढ़ते रहे। हृदयाघात के कारण ये तेजस्वी कवि और चिंतक दिनांक 17 अगस्त 2008 को काल कवलित हो गए यादें शेष छोड़कर)

गा न पाया गान जी भर
दिल उभर कर रह गया गाने सुमन पर गाने दो स्वर
गा न पाया गान जी भर
उठ रही मस्तिष्क उर में
भावना पर भावनाएं
बादलों की टोलियों से
जो छिटकती चंद्रिकाएं
नाचता घन देख मयूरा बोल नीरस तान के स्वर
गा न पाया गान जी भर
चाहता खिलते सुमन का
गान गाता घोलकर स्वर
हाय ! पर मुरझे सुमन की
देख फूटा करूणा का स्वर
दग्ध पीड़ित मौन दिल का और सुन लो यार दो स्वर
गा न पाया गान जी भर
बांधने आती अधर पर
भावना जिन प्रेम बंधन
पर सुमन को देख क्षणभंगुर
सिसकता दग्ध क्रन्दन
ढल गई काया सुमन की छोड़ डाली छोड़ तरूवर
गा न पाया गान जी भर

समीक्षा

दीपक मेघ हिण्डोल : एक समीक्षा

डॉ. अमरेन्द्र का काव्य-संग्रह

डी. एन. जायसवाल

जीवन की वेदना और उसकी शक्तिमान् विश्वस्त प्रसन्नता जब अगाध हो जाती है, तभी वह सम्पूर्णता का क्षण आता है, जिसके सामने जगत एक विरोधी भीत के समान पड़ा न रहकर धूल के कण के समान नम्र हो जाता है। जीवन की प्रवहमान दुर्दम आकांक्षा से प्रेरित यह कवि-मन उत्कट, तन्मय और आत्मविस्मृत हो जाता है अपने ही सृजन में, अनुभूति के आवेशमय अति उच्च विन्दु पर। ''दीपक मेघ हिन्डोल'' डॉ. अमरेन्द्र की कविता संग्रह उनकी मनोदशा की एक ऐसी तस्वीर है जिसमें स्मृति का दर्शन, सौन्दर्य का बोध, किसी अस्पष्ट उमंग की एक लहर अथवा मन का कोई धुँधला आवेग अभिव्यक्त होता है। इनकी कविता के कुंज में प्रवेश कर मध्याह्न के सूर्य का जलता हुआ ताप को चाँद की शीतलता में बदलने की ख्वाहिश और हिम के शुभ्र चादर से आवृत कर देने की कामना देखे जा सकते हैं।

प्रकृति की क्रियाओं के भीतर व्याप्त जिस सनातन नियम का उन्हें पता चला है, वह नियम शांति का नियम है, वह नियम सामंजस्य और सौन्दर्य का नियम है, वह नियम मनुष्य-मनुष्य के बीच एकता और सहानुभूति की सता का नियम है। जहाँ भी मनुष्य के व्यक्तित्व को गौरव, विस्तार और अनन्तता प्रदान करने वाले उपकरण हैं वे सभी स्थल अमरेन्द्र के प्राणों के पहचाने हुए हैं। इनकी काव्य-कला हमें संसार के कोलाहल से उपर ले जाकर जीवन के उस रूप का दर्शन कराती है जिसमें शांति, सुषमा, सामंजस्य, संघर्ष की ज्वाला और वैषम्य के धात-प्रतिधात भी हैं।

समय जब अपने लिए नई चीज बनाना चाहता है तब वह नये-नये भावों को रूप देने के लिए नये कवि और कलाकार पैदा करता है जो प्राचीन भाव धाराओं को मोड़कर अथवा नई भावधाराओं की इजाद कर के समय की प्रगति में सहायक होते हैं। अपने भीतर संधर्ष की यह अवस्था पैदा करना डॉ. अमरेन्द्र की सबसे बड़ी सफलता है।

दुःख! तुम्हारे साथ रहकर कब डरा जीवन मरण से,
प्राण को धेर रहे हो एक मुक्ति-आवरण से,
हूँ तुम्हारे साथ में तो ताप तीनों प्रेय-सुखकर,
तुम जहाँ हो, उस जगह पर मृत्युशीतल, मृत्यु सुन्दर!
जो क्षणिक हैं, शोक-कारक वे सभी मुझसे परे हों।

कवि को अव यह प्रतीत होने लगता है कि अब तक वह

जिसे अपनी अन्तः प्रकृति से साक्षात्कार कहता आया है, वह वस्तुतः उनके विगत भाव-जीवन की कुछ विशेष मूलबद्ध भाव-श्रेणियों का बोध मात्र था। उनको अब इस स्तर पर आकर यह प्रतीत होने लगता है कि उनका वास्तविक भाव-जीवन कुछ ही, अर्थात सीमित, भाव श्रेणियों में बद्ध करके नहीं आँका जा सकता। कवि का मनोजगत् किन्हीं उद्वेगों या अनुरोधों से विचलित होकर कल्पना नेत्रों के सामने चंचल हो उठता है। उसे प्रतीत होता है कि उसकी चेतना अंधेरे मैदान में बहने वाली सरिता है, जिसकी लहरें कुछ क्षणों के लिए चमक उठती है -

पुष्प को आई हँसी क्या बिछ गये मकरन्द खुल कर,
चीर कर नभ नील गिरती रेशमी यह धूप झर-झर,
कूक से अमराइयों को कर रही बेचैन कोयल,
कोहवर में जग लगे यह ज्यों सरोवर-स्वर्ण उत्पल!
क्या यहाँ उद्धव करेगा, गोपियों का रास आया।
मधु पिये मधुमास आया, आज पाहुन पास आया।

डॉ. अमरेन्द्र की इस कविता संग्रह के भीतर की शैलियों में अनेक भाव-धाराएँ और अनेक वैचारिक दृष्टियाँ काम कर रही हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य और स्नेह-भावना से लेकर वो सभ्यता-समीक्षा तक, जो-जो भाव श्रेणियाँ संभव हो सकती है वे सब इसमें हैं। कविता की आत्मा है भाव-बोध। इनकी संवेदनात्मक प्रति क्रियाएँ या इनका सामान्यीकरण कविता में प्रकट होता है। आज कवित्व की साधना जिस अनुपात में बढ़ी है, अन्तर्राष्ट्रीय काव्य में दुरूहता की भी वृद्धि उसी अनुपात से होती आई है। जबकि कवित्व का आन्दोलन इस उद्धेश्य से आरंभ हुआ था कि कविता को उपदेश वाद से बचाया जाय। वह केवल भावों तक सीमित रहे, विचारों के वर्णन को साहित्य की अन्य विधाओं के लिए छोड़ दें। किन्तु इन सब से उपर डॉ. अमरेन्द्र ने इस संग्रह के द्वारा बताया है मनुष्य का ज्यों-ज्यों बौद्धिक विकास होता है, त्यों-त्यों उसकी भावनाएँ सूक्ष्म होती जाती हैं और ये सूक्ष्म भावनाएँ अपनी अभिव्यक्ति के लिए कला में भी सूक्ष्मता और नवीनता उत्पन्न करती हैं।

इन्होंने भावना की तीव्रता से अधिक कला की पूर्णता को महत्त्व दिया है। ये इतने सावधान हैं कि कहीं इनकी भाषा के किनारे टूट न जाय वर्णा वही होगा जो दोष मीरा और कबीर ने की थी। इनकी कविताओं में जो स्वाभाविक प्रवाह है वह इस बात का प्रमाण है कि ये कविताएँ प्रेरणा से आती हैं, मात्र कवि-कौशल का प्रमाण नहीं है। इनकी पंक्तियों की सहजता कंठ में बसने लायक है और ऐसा प्रतीत होता है कि जिस मनोदशा में ये धुल रहे हैं वही मनोदशा कभी-कभी हमारी भी होती है। इनकी कल्पनाओं की आर्द्रता का जादू देखें -

''तुम तृषा के नीर-पानी, लोक गाथा की कहानी!
हो निकट तुमसे लगा यह, चित्त स्थिर, ध्यान हो तुम,
तुम मुकुल में ज्यों अलौकिक सोम के मधुगान हो तुम,
तुम नहीं तो क्या हृदय यह, प्रेम का आधार तुम हो,
झूठ क्या तुमसे कहूँ मैं, यह निखिल संसार तुम हो!
कुछ नया क्या कह रहा मैं, सब लगीं बातें पुरानी।

वाक् सोये, तुम मिले तो, चेतना की मूर्छना हो!
गूंज में तुम व्यक्त होते, इन्द्रियों की अर्चना हो!
एक नीला रंग मधुमय, पुतलियों पर तैरता-सा,
दौड़ उष्णाक पास आया, वर्ष का लेकर कुहासा,
कल तलक जीवन खुला था, आज लगता है पिहानी।

कुछ विनय कुछ प्रीति से ही, अध, दुराचारी रूकेगा,
ऋषि-चरण-आशीष से ही, यह हठी पर्वत झुकेगा,
रक्त बूंदों की जगह पर, स्नेह का अब मेध बरसे!
यह धरा करूणा-दया को, अबन ऐसे और तरसे!
नर भले लाचार-निर्बल, तुम नहीं लम्बार, देवी
काँपता संसार, देवी रोक लो संहार देवी।

साहित्य न तो ऐसी कला है जो सत्य, परिस्थिति और समाज के प्रभावों से मुक्त हो और न कवि ही ऐसा प्राणि होता है जिस पर शिक्षा-दीक्षा और संस्कार का असर नहीं पड़ता हो, आज के धुँधले विचार कल प्रकाशमान होंगे और कल जो चिनगारियाँ मन्द एवं प्रच्छन्न थीं, वे ही आज किरणे बनकर चमक रही है। मनुष्य ने हृदय की उपेक्षा कर के मस्तिष्क की आवश्यकता से अधिक आराधना की है। जब तक हृदय का आसन मस्तिष्क की ऊँचाई तक नहीं पहुँचेगा, तब तक संसार यूँ ही दग्ध होता रहेगा। विश्व में शांति की स्थापना करने के लिए मनुष्य की आत्मा के आँगन में पीपल का एक पेड़ लगाने का काम डॉ. अमरेन्द्र ने इन संग्रहों के द्वारा जो किया है वो तरू-छाया बाहर की नहीं अनुभूतिजन्य वर्षा की रिमझिम और पत्तों से गिरने वाली शबनम की आवाज सुनते-सुनते मनुष्य के हृदय में अंकुरित करने का प्रयास किया है -

''सुप्त मेरे प्राण जागो! शुद्ध मन के ध्यान जागो!
बीज जागो, विटप जागो, फूल जागो, गंध जागो।
क्षिति, सलिल, आकाश जागो! अग्नि जागो, वायु जागो,
रूप जागो, रस-परम सब विश्व भर की आयु जागो।
राग के संग रागिनी तुम, मानिनी के मान जागो।
सुप्त मेरे प्राण जागो! शुद्ध मनके हृदय जागो!

कवि की वाणी केवल कविता के रूप में ग्रहण करने के लिए ही नहीं उसके मकसद और भीतर के कोई बड़ा भाव जगाना होता है। कविता में मन की दिशा और उसकी आत्मा की जागृति प्रधान होती है। अभिव्यक्ति के लिए भाषा, छन्द, और शैलियों अभिनव रूप धारण करती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि कविता मानवात्मा के उत्तरोत्तर होने वाले विकास का साथ दे और चित्रण की सामग्रियों के मोह में पड़कर वह आत्मा की सहज अभिव्यक्ति के मार्ग में कोई रूकावट नहीं डाले।

चाँद और मैं

ईंजी. सूर्य प्रताप सिंह
गूगल, हैदराबाद

कुछ अलग ही रात है यह
मौजूद हैं सब सितारे पुखराजी रंग लिए
आज आसमां की महफिल में।
पर सितारों में सरे आम है
कि चाँद क्यों परेशान है
मद्धिम पड़े सितारों के संग
क्यों दूर कहीं गुमनाम है।
अब यह कौन बताए कि
प्रकृति के खेल में
कब कौन गर्दिश में आ जाए
पर सुना है चाँद को इन्तजार है
किसी और रात का, किसी और साथ का
और शायद कहीं मेरा भी.....

संभाव्य-संदेश

संसार का सुंदरतम संगीत व्यक्ति की अपनी धड़कन है। धड़कन की धक्-धक् में जीवंतता और गतिशीलता का संदेश है। जब कोई व्यक्ति इस सुंदरतम संगीत से आच्छादित हो जाता है तब उसके जीवन में कभी सन्नाटा नहीं होता, वह कभी अकेला नहीं होता।

लोकवाणी

सिलसिला चलता रहे...

अशोक मिज़ाज़
सागर, मध्य प्रदेश

संभाव्य का अप्रैल अंक पढ़ा। कुछ अन्य पत्रिकाओं की तुलना में संभाव्य में ताजगी के साथ-साथ कमाल की कारीगरी, विचारपरक कविताएं, भाषा पर आलेख एवं तथ्यपरक रचनाओं की जो बौछार देखने को मिली, इस हेतु सभी रचनाकारों को साधुवाद !

किस-किस का जिक्र करूँ, किसे छोड़ सब एक से बढ़कर एक हैं। और उन सबसे बढ़कर उन्हें एक जगह संकलित करनेवालों की तारीफ जरूरी है, इसलिए संभाव्य परिवार के सभी सदस्यों को धन्यवाद।

उम्मीद करता हूँ कि सिलसिला यूँ ही चलता रहेगा... आमीन।

'संभाव्य' त्रैमासिक : ऊर्जावान संपादन और प्रबंधन

अभिनव अरूण
वरिष्ठ उद्घोषक
आकाशवाणी, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

सर्वप्रथम आभार जो इतनी सशक्त, निर्णायक तेवर और कलेवरवाली पत्रिका से मुझे आप सबने जोड़ा और मैं इसके अप्रैल अंक से रूबरू हो सका। पत्रिका का संयोजन, संपादन और रचनाओं का स्तर बेहद प्रभावित करता है। कहीं भी उद्देश्य से कोई समझौता नहीं। सभी कहानियां, आलेख और कवितायें समय और समाज के स्पंदन को महसूस कराने में सक्षम और जैसा आपने पुरोवाक में कहा है 'जागते रहो और जगाते रहो' के सरोकर के साथ उपस्थित हैं। करीब चालीस पन्नों की ही और भी पत्रिकाएं आती हैं मेरे पास पर ईमानदारी से कहूं तो इन चालीस पन्नों का कोई जोड़, कोई सानी नहीं। संपादकमंडल की मिहनत साफ दिखती है।

डॉ. जी. पी. सिंह, रंजना जायसवाल, मोनिका मोहिनी, अकेला जी, विकल जी, अशोक मिजाज, अनंत अलोक, शबीना तौकीर व देवेन्द्र सौरभ की काव्य रचनाएँ बहुत-बहुत दिनों तक याद रखी जाने वाली हैं। सभी सशक्त...सभी कवियाँ को बहुत बधाई।

डॉ. राधा कृष्ण सहाय, डॉ. अमरेन्द्र, डॉ. अश्विनी, पी.एन.जायसवाल, उमाकांत भारती प्रो. शरद नारायण खरे, कृपा शंकर चौबे, डॉ. आर. के शर्मा और अशोक कुमार झा के आलेख और कहानियां बहुत ही अच्छे हैं शिल्प और कथ्य हर लिहाज से। विशेषकर ''स्वाहा'' कहानी आज के जीवन की वस्तुस्थिति को बखूबी और रोचकता से प्रस्तुत करती है और पाठक को सचेत भी करने में सफल है। इन रचनाकारों के प्रति भी बहुत बधाई और शुभेच्छा !

एक समग्र विश्वग्राम की परिकल्पना के साथ प्रकाशन का यह प्रयास कदाचित साहित्यिक फलक पर मील का पत्थर है। लेखन सिर्फ मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि बदलाव का जरिया है और 'संभाव्य पत्रिका' इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम साबित होगी। मेरी बहुत सारी शुभकामनायें और बधाई 'संभाव्य' की समूची ऊर्जावान संपादन और प्रबंधन टीम को !

लोकवाणी

नवयुग का आह्वान

बी. के अरूण
भागलपुर, बिहार

अप्रेल 2013 की पत्रिका **'संभाव्य'** दिनांक 4 मई 2013 को परमात्म स्नेही आत्मा डॉ. जी. पी. सिंह जी संपादक महोदय के सौजन्य से प्राप्त हुआ।

समयान्तर में पत्रिका को मनोयोग से पढ़ा। मन उमंग-उत्साह से भर गया। सुन्दर-अतिसुन्दर-परमसुन्दर का भाव मानसपटल पर तरंगित होने लगा। भुख से अनायाश निकल पड़ा ''ब्रह्म से संभाव्य पधारा'', प्रेम-शांति का संदेश सुनाने''।

साहित्य की विधाओं से दूर मुझ आत्मा को पत्रिका का केन्द्रबिन्दु 'मानवता के गुणों से दूर शब्द समूह ने ऐसा छूआ कि हर्ष-विषाद के झूला में झूल रहा हूँ। पत्रिका के सम्पादकीय, लेख-आलेख, कविता-गजल, परिचय आदि प्रत्येक इकाई से 'मानवता' की पुकार ही नहीं, हूँकार निकल रहा है - हे मानव जागो! वर्तमान विश्व में पाप की घटा छायी हुई है, मानवता को हृदय में समाओ, सच्चा-सच्चा स्थान दो!! रावण राज्य ने हर मानव को रोग-शोक से व्याकुल कर रखा है। सुख-शांति-प्रेम दिवा स्वप्न हो गया है।

हे मानव! मानवता की माला का मणका बनो। यह आर्तनाद पत्रिका के हर पृष्ट से सुनाई जा रही है। विश्व कल्याणकारी बनने का आहवान हो रहा है। लगता है पंचविकारों (काम-क्रोध-लोभ-मोह-अंहकार) को आत्मा से निःसृत करने हेतु शिव का डमरू बज रहा है। यह आवाज दूर-दूर पहुँचे, यही मेरी शुभभावना-शुमकामना है।

शरीर रूपी मकान की मालिक है 'आत्मा' मन आत्मा की एक शक्ति है और आत्मा वह चेतन शक्ति है जिसकी चेतना सारे शरीर में व्याप्त है। उसके शरीर में रहने से शरीर का हर अवयव जीवित लगता है। उसके निकल जाने पर हर अवयव मृत हो जाता है। अतः मेरे चिंतन से पत्रिका 'संभाव्य' सिर्फ काले अक्षरों से भरा कागज के पृष्ठों का समूह मात्र ही नहीं है बल्कि शरीर रूपी विश्व की आत्मा है। शरीर विनाशी हैं, आत्मा अविनाशी है।

पत्रिका 'संभाव्य' अमर ज्ञान की दीप शिखा है। मानव का खोया खजाना 'मानवता' को 'संभाव्य' ने फिर से मिला दिया है। अमर ज्योति से आत्म ज्योति जलाने की प्रेरणा दे रहा है। सत्यम-शिवम्-सुंदरम् पत्रिका की भावना है।

जिस प्रकार बसंतऋतु प्रकृति का श्रृंगार करती है, उसी प्रकार पत्रिका के लेखकगण विश्व मानव को मानवता की देवी, गुणों से श्रृंगार करने का प्रयास किये हैं क्योंकि, विश्वशांति के लिए, विश्व कल्याण के लिए हर मानव को देवतुल्य बनना ही है।

पत्रिका का आवरण पृष्ठ प्रकृति के पाँचों तत्वों के साथ सांगोपांग होने का संदेश देता है। इससे मानव का सूरत और सीरत हर्षित होगा और तब विश्व जड़-चेतन भी हर्षित बन जायेगा। परिणामतः विश्व के वर्तमान त्रास का शमन होगा। फिर सुख-सौभाग्य बाला एक नये समाज का, विश्व का सृजन होगा जहाँ बाध और बकरी एक घाट पर साथ-साथ जल पीयेगा।

निर्भयता अधिकार होगा,
सजग प्रहरी 'संभाव्य' का हूँकार है,
युग परिवर्तन का विहान हुआ है,
कि नवयुग का आहवान हुआ है।

अंततः - पत्रिका 'संभाव्य' के संस्थापक, संरक्षक, प्रधान संपादक, संपादक द्वय, संस्थापक सदस्य, स्थायी सदस्य, कार्यालय प्रभारी, लेखक, पाठक सभी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ साथ ही कामना करता हूँ कि परमपिता शिव, पत्रिका-परिवार को ऐसी शक्ति प्रदान करें कि सभी 'ज्ञानामृत' से परिपूर्ण रहें जिससे कि विश्वकल्याण का कार्य साहित्यिक माध्यम से अवाध गति से चलता रहे।

साहित्यिक आयाम

जनार्दन यादव
नरपतगंज, अररिया

भागलपुर यात्रा के दौरान मुझे ''संभाव्य'' जनवरी 2013 की प्रति मिली थी। आप सबों को हार्दिक बधाई!

''संभाव्य'' के प्रथम अंक को देखकर ऐसा प्रतीत हुआ कि यह पत्रिका भविष्य में अनेक नये साहित्यिक आयाम प्राप्त करेगी पत्रिका में प्रकाशित सभी लेखें, कहानी, कविता, गजल अपना प्रभाव छोड़ती हैं। सद्विचार संवर्धन में यह काफी प्रभावी पत्रिका होगी।

धन्यवाद!

www.sambhavya.com

fastprint#9430088362
फास्ट PRINT
Quality in time
Digital Print • Designs • Multicolour Print